

UNIVERSAL
LIBRARY

OU_180876

UNIVERSAL
LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H83/L47H Accession No. J.H. 683

Author चंद्रा पादसाय, भास्ति, अचरक

Title भास्ति १४ / १९४०

This book should be returned on or before the date last marked below.

आनन्दमठ

मल्लिकार्जुन

उपन्यासमन्त्रालय

वङ्किमचन्द्र चट्टोपाध्याय

अनुवादक

श्री सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'

प्रकाशक

इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग

१९४०

मूल्य १)

Printed and published by
K. Mittra at The Indian Press. Ltd.,
AL I A H A B A D

आनन्दमठ

उपक्रमणिका

बहुत ही विस्तृत अरण्य। अरण्य में अधिकांश पेड़ गाल के, परन्तु उनके अलावा और भी अनेक जातियों के पेड़ हैं। पेड़ों के मिर्गों में मिर्ग, पत्तों से पत्ते मिले हुए, ऐसी अनेक श्रणियां चली गई हैं। उनमें विच्छेद नहीं, छिद्र नहीं, आलाक पेंडने का रास्ता तक बन्द, दम तरह पल्लवों का अनन्त समुद्र, कैमों पर काम, कैमों पर काम हुआ की तरङ्गों पर तरङ्ग मारते लहराते चले गये हैं। नीचे घना अंधेरा, दोपहर का भी आलाक अस्पष्ट, डरावना उपक भीतर कभी आदम नहीं जाता। पत्तों के अनन्त समर और जङ्गली पशु-पक्षियों के रव के सिवा दूसरा शब्द उसके भीतर नहीं सुन पड़ता।

एक तो यह विस्तृत बहुत ही निविड़ अन्धतमोह्य अरण्य, दूसरे रात्रि का समय। रात का दूसरा पहर। रात बहुत ही अंधेरी, जङ्गल के बाहर भी अंधेरा, कुछ देख नहीं पड़ता। जङ्गल के भीतर का अंधेरा जमान के भीतर का जैसा अंधेरा है।

जानवर और चिड़ियां बिल्कुल निस्तब्ध। लाखों, करोड़ों जानवर, चिड़ियां और कीड़े-मकौड़े उस अरण्य में रहते हैं। कोई कोई शब्द नहीं कर रहा। बल्कि वह अन्वकार अनुभव किया जा सकता है—शब्दमयी पृथ्वी का वह निस्तब्धभाव अनुभव नहीं किया जा सकता। उस अनन्त शून्य अरण्य में, उस सूचिभेद्य अन्वकारमय निशीथ में, उस अनुभवनीय निस्तब्धता में शब्द हुआ,—“क्या मेरा मनस्काम सिद्ध नहीं होगा ?”

शब्द होने के बाद वह अरण्य फिर निम्नस्थता में डूब गया। तब कौन कहेगा कि इस अरण्य में मनुष्य-शब्द सुन पड़ा था ? कुछ दूर बाद फिर शब्द हुआ; फिर उस निम्नस्थता का सथकर मनुष्य-वृण्ड ध्वनित हुआ,—“क्या मेरा मनस्काम सिद्ध नही होगा ?”

इस तरह तीन बार वह अन्धकार-समुद्र आलोडित हुआ। तब उत्तर हुआ, “तुम्हारा पण क्या है ?”

प्रत्युत्तर में कहा गया, “पण मेरा जीवनसर्वस्व है।”

प्रतिशब्द हुआ, “जीवन तुच्छ है, सभी त्याग कर सकते हैं।”

“यार क्या है ? और क्या है ?”

तब उत्तर आया, “भक्ति !”

प्रथम खण्ड

पहला परिच्छेद

११७६ साल की गरमिया में एक दिन पदचिह्न ग्राम में धूप बड़ी तेज़ थी, गिहिन की गरमा। गाँव घरों से भरा-पूरा, परन्तु आदमी नहीं देख पड़ता। बाज़ार में क़तार की क़तार दूकानें, हाट में क़तार की क़तार मर्दियाँ, टोले टोले में मैकड़ों मिट्टी के घर, बीच बीच में ऊँची-नीची अट्टालिकायें। आज सब नीरव है। बाज़ार में दूकानें बन्द हैं, दूकानदार कहाँ भग गये हैं, पता नहीं। आज बाज़ार का दिन है, बाज़ार नहीं लगा। भाँग का दिन है, भिखारी नहीं निकले। जुलाहे करघे का काम छोड़कर घर के एक आँग पड़े रो रहे हैं, व्यवसायी कारोबार भूलकर गोद में लडका लिये रो रहे हैं। दानियों ने दान बन्द कर दिया है। मृदरिमाँ ने मृदरमा बन्द कर दिया है। बच्चे भी शायद अब राने की हिम्मत नहीं करते। आम रास्ते पर आदम-जात नहीं देख पड़ता। तालाब में नहानेवाला नहीं दिखता। घर के दरवाज़े पर आदमी नहीं दिखता। पेड़ पर चिड़ियाँ नहीं दिखनीं। चरागाह में पशु नहीं दिखता। मिफ़े मरघट में म्यार और कुत्ते दिख रहे हैं। एक बड़ी अट्टालिका—उसके बड़े बड़े, छड़वाले खम्भे दूर से देख पड़ते हैं—गृहों के उस अरण्य में शैलशिखर जैसी शोभा पा रही है। शोभा भी कौन-सी ? उसके द्वार बन्द हैं, गृह में मनुष्यों का समागम नहीं, कोई आवाज़ नहीं उठ

रही, हवा के पंठने के लिए भी जैसे रुकावट हो। घर के भीतर कमरे में दुपहर को भी अँधेरा है। अँधेरे में, आधी रात को फूली दो कलियाँ-पी औरत-मर्दे की एक जोड़ी बँधी में च रही है। उसके सामने मन्वन्तर है।

११७४ साल की फसल अच्छी नहीं रही, इसलिए ११७५ साल में चावल की दर कुछ बढ़ गई—लोगों को तकलीफ हुई, परन्तु राजा ने कौड़ी-कौड़ी लगान वसूल कर लिया। लगान कौड़ी-कौड़ी चुकता कर गरीब किसान एक वक्त खाकर रहे। ११७५ साल में बारिश अच्छी हुई। लोगों ने सोचा, शायद देवता की कृपा हुई। आनन्द से फिर चरवाहों ने गोचरों में गात गाये, किसानों की ब्रियों ने फिर चांदी के बाजूबन्द गढ़ा देने के लिए अपने-अपने पति से उपद्रव मचाना शुरू किया। एकाएक क्वार में देवता विमुख हुए। क्वार और कालिक में एक बूँद पानी नहीं बरसा, खेतों में धान सूखकर बिलकुल पंरा हो गया। जिनके दो-एक विम्बांसी फला था, उनका सरकार के कर्मचारियों ने मिपाहियों के लिए खरीदकर रख लिया, आदमियों के खाने को नहीं मिला। पहले एक वक्त उपास किया, फिर राजा एक वक्त भी अध-पेट रहने लगे, इसके बाद दोनों वक्त का उपास शुरू हुआ। जो कुछ थोड़ी-सी चेतवाला फसल हुई, वह सँह तक पहुँचती पहुँचती खत्म हो गई। परन्तु, मुहम्मद राजा खाँ कर वसूल करने के अफसर थे, सोचा, मैं इस वक्त सरफराज हूँगा। एक साथ भैंसड़े दस रुपये के हिमाय से कर बढ़ा दिया। बज्जाल में फूट-फूट कर लोग रंगने लगे।

लोग पहले भीख माँगने लगे, इसके बाद, भीख कौन दे?—उपास करने लगे। इसके बाद गंगों के शिकार होने लगे। ढोर बेचे, फिर हल और माची बेची, बीज के धान बेचे, घर-द्वार बेचे, ज़र-ज़मीन बेची। इसके बाद लड़कियाँ बेचना शुरू किया, फिर लड़के बेचने लगे। इसके बाद स्या बेचने लगे। इसके बाद लड़की-लड़का-झी कौन खरीदे? खरीदार नहीं, सभी बेचना चाहते हैं। 'भोजन' के टोटे से पेंडों के पत्ते खाने लगे। तरह-तरह

की घास, बाँदा और घासों के दाने खाने लगे। नीची क्रीम के लोग कुत्ते, चूहे और बिल्लियाँ खाने लगे। बहुत भग गये, जो भगे, वे विदेश में भूखों मरे। जो नहीं भगे, वे अखाद्य खाकर, न खाकर, गंगों के शिकार होकर मरे।

गंग का वक्त आया,—बुखार, हैजा, ज्वर और चेचक होने लगे। चेचक का खास तौर से दौरादाग हुआ। घर-घर चेचक में लोग मरने लगे। कौन किसे पानी दे, कौन किसे लुण् ? कोई किपी की दवा नहीं करता, कोई किसी को नहीं देखता; मरने पर कोई उठा हर नहीं फेंकता; बड़ी रमणीय देह अट्टालिका में अपने आप मड़ती हैं। जिस घर में चेचक का एक टफ़ा प्रवेश होता जाता है, उस घर के रहनेवाले, गंगा डालकर भय से भग जाते हैं।

महेन्द्रसिंह पदचिह्न ग्राम के बड़े धनवान् व्यक्ति हैं, परन्तु आज धनी और निर्धन की एक दर है। इस दुःख के समय व्याधि से ग्रस्त होकर उनके आत्माय-पूजन, दाम-दामियाँ सभी चले गये हैं। कोई मर गया है, कोई भग गया है। उस बड़े परिवार में अब केवल वे हैं, उनकी पत्नी और एक छोटी लड़की। इन्हीं की बातें हम कर रहे थे।

उनकी पत्नी कल्याणी ने चिन्ता छोड़कर खुद गोशाला जाकर गाय लगाई। फिर दूध गर्म करके लड़की के पिलाकर गाय के चारा पानी देने गई। लोट कर आई, तब महेन्द्र ने कहा, “इस तरह कितने दिन चलेगा ?”

कल्याणी ने कहा, “बहुत अधिक दिन नहीं। जितने दिन चलता है, मैं जितने दिन चला सकूँगी; चलाती हूँ, इसके बाद तुम लड़की को लेकर शहर चले जाना।”

महेन्द्र—शहर अगर जाना है तो तुम्हें फिर इतनी तकलीफ़ क्यों दूँ ? चला न, अभी चले।

बाद को दोनों में बड़ी बातचीत हुई।

कल्याणी—शहर जाने पर क्या कोई विशेष उपकार होगा ?

महेन्द्र—वह जगह भी, मुमकिन, इसी तरह जनहीन है, जान बचाने के उपाय से रहित ।

कल्याणी—मुर्शिदाबाद, क़ास्मिबाज़ार या कलकत्ता जाने पर जान बच सकती है । यह जगह छोड़ देना हर तरह उचित है ।

महेन्द्र ने कहा, “यह मकान बहुत काल से, पुरुषानुक्रम से सञ्चित हुए धन से, पूर्ण है, यह सब चोर लूट ले जायेंगे ।”

कल्याणी—अगर लूटने आयेंगे तो क्या हम दो आदमी रोक सकेंगे ? जान नहीं बची तो धन का भोग कौन करेगा ? चलो, अभी भी बन्द करके चले । जान रही तो लौटकर भोग करेंगे ।

महेन्द्र ने पूछा, “क्या तुम रास्ता चल सकेगी ? कहार तो सब मर गये हैं, बैल हैं तो गाड़ीवान नहीं, गाड़ीवान है तो बैल नहीं ।”

कल्याणी—मैं रास्ता चलूँगी, तुम चिन्ता न करो ।

कल्याणी ने मन ही मन निश्चय किया, न होगा रास्ते में मरकर पड़ी रहूँगी, फिर भी तो ये दो आदमी बचेंगे ।

दूसरे दिन सुबह को दोनों ने कुछ धन साथ लेकर, द्वार-द्वार और घर में ताला लगा कर, ढोरोँ के खोलकर, लड़की के गोद लेकर राजधानी की ओर यात्रा की । चलते समय महेन्द्र ने कहा, “राह बड़ी दुर्गम है । क्रदम-क्रदम पर डाकू और लुटेरे घूम रहे हैं, खाली हाथ चलना उचित नहीं ।” यह कह कर महेन्द्र घर लौटकर बन्दूक और गोली बाख़्द ले गये ।

देखकर कल्याणी ने कहा—“अगर अस्त्र की बात सोची तो सुकुमारी को ज़रा लो, मैं भी अस्त्र ले आऊँ ।” यह कहकर कल्याणी कन्या को महेन्द्र की गोद में देकर घर के भीतर गई ।

महेन्द्र ने कहा—“तुम फिर कौन-सा हथियार बाँधोगी ?”

कल्याणी ने लौटकर छोटी-सी ज़हर की डिबिया कपड़े में छिपा ली ।

दुःख के दिन भाग्य में, नहीं जाना, क्या बदा है, सोचकर कल्याणी ने पहले से विष ले रक्खा।

जेठ का महीना, कड़कती धूप से पृथ्वी आग, हवा में आग उड़ रही है, आसमान तपा तपि का चँदावा-सा, रास्ते की धूल चिनगायियों-सी। कल्याणी को पसीना आने लगा। कभी बबूल की छाँह में, कभी खजूर की छाँह में बैठ कर सूखते तालाबों का गँदला पानी पीकर बड़े कष्ट से राह चलने लगी। लड़की महेन्द्र की गोद में—रह रह कर महेन्द्र लड़की के हवा करते गये। एक एक दफा निविड़ 'श्यामल पत्रों' से रञ्जित सुगन्ध फूलों से युक्त लता-वेष्टित वृक्ष की छाया में बैठकर दोनों विश्राम कर लेते थे। कल्याणी की सहनशीलता देखकर महेन्द्र तन्त्रजुब में आ गये। कपड़े का छोर भिगोकर महेन्द्र ने पास के पल्लव से जल लाकर अपने और कल्याणी के मुँह पर, हाथों पर, पैरों पर और सर पर सिञ्चन किया।

कल्याणी कुछ ठण्ठी हुई सही, परन्तु भूख से दोनों बहुत व्याकुल हुए। वह भी सही जाती है, लड़की की भूख और प्यास नहीं सही जाती। इसलिए वे फिर रास्ता चलने लगे। वे आग की लपटें तैरकर शाम से पहले एक चट्टी में पहुँचे। महेन्द्र को मन ही मन बड़ी आशा थी, चट्टी पहुँचकर स्त्री और कन्या के मुँह में ठण्डा पानी डाल सकेंगे, जान बचाने के लिए कुछ खाना खिला सकेंगे। परन्तु कहाँ ? चट्टी में तो आदमी ही नहीं। बड़े बड़े घर खाली पड़े हैं। आदमी भग गये हैं। महेन्द्र ने इधर-उधर देखकर स्त्री और कन्या को एक कमरे में लेटाया। खुद बाहर निकलकर ऊँची-ऊँची आवाज़ें लगाते हुए आदमियों को पुकारने लगे। किसी का जवाब नहीं मिला। तब महेन्द्र ने कल्याणी से कहा, "तुम ज़रा हिम्मत करके अकेली रहो; देखूँ, अगर कहीं गाय हो, श्रीकृष्ण दया करे, मैं दूध लाऊँगा।" यह कहकर एक मिट्टी का छोटा घड़ा हाथ में लेकर महेन्द्र बाहर निकले।

घड़े बहुत पड़े थे।

दूसरा परिच्छेद

महेन्द्र चले गये। कल्याणी अकेला, बालिका लिय हुए उस निर्जन जगह प्रायः अन्धकार कमरे में चारों ओर देख रही थीं। उनके मन का बड़ा डर लग रहा था। कोई कहीं नहीं, आदमी की कोई आहट भी नहीं मिलती, सिर्फे स्यार और कुत्तों की आवाज़ आ रही है। वे साच रही थीं, “अ्यों उन्हें मैंने जाने दिया ? कुछ देर और भूख-प्यास सही जाती।” साचा, “चारों ओर से दरवाज़े बन्द कर लूँ।” परन्तु एक भो दरवाज़े में किवाड़े या अर्गला नहीं। इस तरह चारों ओर देखते देखते सामने के द्वार पर एक छाया-सी देखी। आदमी की जैसी आकृति मालूम दी, परन्तु आदमी नहीं मालूम देता। बहुत ही सूखा, दुबला; निहायत काला रंग, नङ्गा, विकट आकार के आदमी की तरह क्या आकर दरवाज़े पर खड़ा हुआ। कुछ देर बाद उस छाँह ने जैसे हाथ उठाया, हाड़-से-जगो चमड़े-शले बहुत ही लम्बे सूखे हाथ की लम्बो सूखी अँगुलियों से जैसे किसी को संकेत करके बुलाया। कल्याणी के प्राण सूख गये। तब उसी तरह की एक और छाँह सूखी, काली, लम्बो, नङ्गो. पहलेवाली छाँह के पास आकर खड़ी हुई। इसके बाद एक और आई, इसके बाद एक और आई। कितनी ही आईं, धीरे-धीरे चुपचाप कमरे में घुसने लगीं। वह प्रायः अँधेरा रहनेवाला गृह आधीरात के मरघट की तरह भयङ्कर हो गया। तब प्रेत जैसी वे मूर्तिर्या कल्याणी और उनकी लड़की को घेरकर खड़ो हो गईं। कल्याणी प्रायः मूर्च्छिता हो गईं। काले-काले दुबले-दुबले वे लोग तब कल्याणी और उनकी कन्या को उठाकर घर के बाहर लाकर, खेत पार करते हुए एक जङ्गल के भीतर ले गये।

कुछ देर बाद महेन्द्र घड़े में दूध लेकर उस जगह आकर पहुँचे। देखा, कहीं कोई नहीं। इधर-उधर खोजा, लड़की का नाम लेकर, अन्त में खो का नाम लेकर बहुत पुकारा, कोई जवाब नहीं मिला, कोई टोह नहीं मिली।

तीसरा परिच्छेद

जिस वन में चोरों ने कल्याणी को उतारा, वह बड़ा मनाहर वन है। उजाला नहीं, शोभा देखें ऐसी आँख भी नहीं, दरिद्र के हृदय के सौन्दर्य की तरह उस वन का सौन्दर्य अदृष्ट रहा। देश में भोजन रहे या न रहे, वन में फूल हैं, फूलों की सुगन्ध से उस अन्धकार में भी प्रकाश मालूम दे रहा था। बीच में साफ़ सुकोमल, फूलाँ से आवृत भूमि पर चोरों ने कल्याणी और उसकी लड़की को उतारा। वे लोग उन्हें घेरकर बैठे। फिर वे लाग वाद-विवाद करने लगे कि, इन्हें लेकर क्या किया जाय ? जो कुछ अलङ्कार कल्याणी के साथ थे, उन लोगों ने पहले ही हाथ में कर लिये थे। एक दल उनके बँटवारे में उलझा था। अलङ्कारों का बँटवारा हो जाने पर एक चोर ने कहा “मैं चाँदी-सेना लेकर क्या करूँगा ? एक थान गहना लेकर कोई एक मुट्ठी चावल मुझे दे, भूख से जान निकल रही है, आज सिर्फ़ पेड़ के पत्ते खाकर हूँ।”

एक के यह बात कहने पर सभी वैसा कहकर गुल मचाने लगे, “चावल दो, चावल दो, भूख से जान निकल रही है, सेना-चाँदी नहीं चाहिए।” सरदार उन्हें रोकने लगा, लेकिन कोई रुका नहीं, क्रमशः ऊँचे गले से बातचीत होने लगी, गालियाँ चलने लगीं, मारपीट की नौबत आ गई। जो जो गहने बँटवारे में लोगों को मिले थे, वही वही फँककर गुस्से से सरदार को मारा। सरदार ने दो-एक को मारा; तब सब मिलकर सरदार पर दूटे और मारने लगे। सरदार भूख का मारा और दुबला था, दो-चार हाथ पड़ते ही ज़मीन पर आ गया और जान छोड़ दी। तब भूखे, बदले, जंग, बदहवास चोरों में से एक ने कहा, “स्पार और कुत्तों का मांस खाया है, भूख से जान की आ

पड़ी है, आओ भाइयो, आज इस मुड्ड को खाँयें।” तब सब आदमी “जय काली” कहकर ऊँचा नारा लगाने लगे। “बम काली। आज आदमी का मांस खाँयेंगे।” यह कहकर वे दुबली-दुबली, काली-काली प्रेत-जैसी मूर्तियाँ अँधेरे में खिलखिला कर हँसती हुई तालियाँ बजा बजाकर नाचने लगीं। सरदार की देह जलाने के लिए एक आदमी आग जलाने लगा। सूखी लता, लकड़ी और तिन लाकर चकमक पत्थर से आग निकाल तिन-समेत लकड़ी जला दी। आग धीरे धीरे जलने लगी, पास के आम, निम्बू, कटहल, ताड़, इमली और खजूर आदि के लहलहे पेड़-पल्लव धीरे धीरे चमकने लगे; उजाले से कहीं पत्ते झलमलाने लगे, कहीं घास; कहीं अँधेरा और गहरा हो गया। आग तैयार हो जाने पर एक आदमी मुँह की टाँग पकड़कर घसीटकर आग में फेकने लगा। तब एक दूसरे ने कहा, “ठहरो, ठहरो, अगर आदमी का मांस खाकर ही आज प्राण बचाने हैं, तो इस बुड्ढे का सूखा मांस क्यों खाँयें? आज जो कुछ लूट ले आये हैं, वही खाँयेंगे। आओ, उस छाटी लड़की को जलाकर खाँयें।” एक दूसरे ने कहा, “जो कुछ हो जल्द भून भाई, अब भूख नहीं सही जाती।” तब सब लोग लोलुप दृष्टि से, जहाँ कल्याणी कन्या को लेकर पड़ी थीं, उस ओर देखने लगे। देखा, वह जगह खाली है, लड़की भी नहीं, मा भी नहीं। चोरों की तकरार के वक्त मौक़ा देखकर कल्याणी लड़की को गोद में लेकर, उसके मुँह में स्तन लगाकर, वन में भग गई थीं, शिकार भग गया देखकर “मार मार” कहते हुए वे प्रेत जैसे चोर चारों तरफ़ दौड़े। हालत बदलने पर आदमी खूँखार जानवर बन जाता है।

चौथा परिच्छेद

वन में अत्यन्त अन्धकार है, कल्याणी उसके भीतर रास्ता नहीं पा रही हैं। सटे हुए पेड़ों, लताओं और काँटों से एक तो रास्ता नहीं, तिस पर घना अँधेरा। काँटों के भीतर से कल्याणी वन में पैठने लगीं। लड़की के बदन में काँटे छिदने लगे। लड़की बीच बीच में रोने लगी। कल्याणी इस तरह लोहूलुहान होती हुई वन में बहुत दूर प्रवेश कर गईं। कुछ देर बाद चाँद उगा। अब तक कल्याणी के मन में कुछ भरोसा था कि अँधेरे में दस्यु उन्हें नहीं देख पायेंगे, कुछ देर तक खोजकर पीछा छोड़ देंगे; परन्तु इस समय चाँद उगने पर वह भरोसा गया। आकाश पर चढ़कर चाँद ने वन के मस्तक पर उजाला ढाल दिया—भीतर वन का अँधेरा उजाले से भीग गया। अन्धकार उज्ज्वल हो गया। बीच बीच छेदों के भीतर से चाँदनी भाँकने लगी। चाँद जितना ऊँचा चढ़ने लगा, उतना और भी प्रकाश वन में पैठने लगा, अन्धकार और भी वन के भीतर छिपने लगा। कल्याणी कन्या को लेकर और भी वन के भीतर छिपने लगीं। तब दस्यु और भी चिल्लाते हुए चारों ओर से दौड़े आने लगे—लड़की डरकर और भी चिल्ला चिल्लाकर रोने लगी। कल्याणी तब निरस्त हुईं, फिर भगने की कोशिश उन्होंने नहीं की; एक बड़े से पेड़ के नीचे कण्टकशून्य तृणमय स्थान में बैठकर कन्या को गोद में लेकर केवल पुकारने लगीं, “कहाँ हो तुम ! जिन्हें मैं राज़ पूजती हूँ, नित्य नमस्कार करती हूँ, जिनके भरोसे इस वन में भी प्रवेश कर सकी थी, कहाँ हो तुम हे मधुसूदन !” इसी समय भय से, भक्ति की प्रगाढ़ता से, भूख और प्यास की मारी कल्याणी, बाह्य ज्ञान से रहित भीतर से सचेत होकर सुनने लगीं, अन्तरिक्ष में स्वर्गीय स्वर से गाया जा रहा है—

“हरे मुरारे मधुकैटभारे !

गोपाल गोविन्द मुकुन्द शौरे !

हरे मुरारे मधुकैटभारे !”

कल्याणी ने बचपन से पुराणों में सुना है कि देवर्षि वीणायन्त्र से भगवद्भजन करते हुए आकाशमार्ग से संसार का भ्रमण किया करते हैं, उनके मन में वही कल्पना जगने लगी। मन ही मन देखने लगीं, शुभ्रशरीर, शुभ्रकेश, शुभ्रवसन, महाशरीर महासुनि वीणा हाथ में लिये हुए, चाँदनी से उज्ज्वल, नीले आकाश-पथ में गा रहे हैं—

“हरे मुरारे मधुकैटभारे !”

क्रमशः गीत पास आने लगा, और भी साफ सुनने लगीं—

“हरे मुरारे मधुकैटभारे !”

क्रमशः और भी पास—और भी साफ—

“हरे मुरारे मधुकैटभारे !”

अन्त में कल्याणी के सर पर वनस्थली का प्रतिध्वनित कर गीत बजा—

“हरे मुरारे मधुकैटभारे !”

कल्याणी ने तब आँखें खोलीं। उम वन के ऊँधेरे से मिली अधखिली चाँदनी में देखा, सामने वही शुभ्रशरीर, शुभ्रकेश, शुभ्रमश्रु (सफेद दाढ़ी मूँछवाले), शुभ्रवसन ऋषि-मूर्ति। अनमनी होती हुई भी वैसी ही हुई चेतना से कल्याणी ने सोचा, “प्रणाम करूँगी”, परन्तु प्रणाम नहीं कर सकीं, सर झुकते ही बिलकुल बेहोश होकर धराशायी हो गईं।

पाँचवाँ परिच्छेद

उसी वन में एक बड़े से भूखण्ड में टूटी शिलाओं से विरा हुआ एक बड़ा मठ है। पुरातत्त्वविद देखने पर कह सकते थे, यह पहले बौद्धों का विहार था—इसके बाद हिन्दुओं का मठ बना है। इमारतें दोमजिला हैं, बीच में बहुत तरह के देवमन्दिर हैं, और सामने एक नाट्यमन्दिर; प्रायः सभी चारदीवारी से घिरी हैं, और बाहर के पेड़ों की कृतारों से इस तरह ढकी हुई हैं कि दिन में भी पास से कोई नहीं समझ पाता कि यहाँ इमारतें हैं। अट्टालिकायें जगह जगह से टूटी हुई हैं, परन्तु दिन में देख पड़ता है कि उन टूटी जगहों की मरम्मत की गई है। देखते ही मालूम होता है कि इस घने दुर्भेद्य जंगल में आदम रहते हैं। इसी मठ की एक कोठरी में एक बड़ा कुन्दा जल रहा था, उसके भीतर कल्याणी ने पहले-पहल चेतना आने पर देखा, सामने वही शुभ्रशरीर शुभ्रवसन, महापुरुष हैं। कल्याणी विस्मित आँखों से फिर देखने लगी, अभी भी उनकी स्मृति लौट नहीं रही थी। तब महापुरुष ने कहा, “मा ! देवता की जगह है, शङ्का न करना। थोड़ा-सा दूध है, पियो; इसके बाद तुमसे बातें करूँगा।”

कल्याणी पहले कुछ भी नहीं समझ सकी, इसके बाद क्रमशः मन में कुछ स्थिरता आने पर गले में आँचल खींचकर उस महात्मा को प्रणाम किया। उन्होंने सुमङ्गल आशीर्वाद देकर एक दूसरे कमरे से मिट्टी का मङ्कता हुआ बरतन निकाला और उस जलती आग में दूध गर्म किया। दूध गर्म होने पर उसे कल्याणी को देकर बोले, “मा, थोड़ा-सा लड़की को पिलाओ, थोड़ा-सा खुद पियो, इसके बाद बातचीत करना।” कल्याणी प्रसन्न वित्त से कन्या को दूध पिलाने लगी। तब वे महापुरुष “मैं जब तक

न आऊँ, कोई चिन्ता न करना” कहकर कमरे से बाहर गये। बाहर से कुछ देर बाद लौट आकर देखा, कल्याणी लड़की को दूध पिला चुकी हैं, लेकिन खुद कुछ भी नहीं पिया; दूध जितना था, प्रायः उतना ही है, बहुत थोड़ा खर्च हुआ है। उस पुरुष ने तब कहा, “मा, तुमने दूध नहीं पिया, मैं फिर बाहर जा रहा हूँ, तुम्हारे दूध पिये पिना नहीं लौटूँगा।”

वे ऋषितुल्य पुरुष यह कह कर बाहर जा रहे थे, कल्याणी ने फिर उन्हें प्रणाम करके हाथ जोड़े।

वनवासी ने पूछा, “क्या कहना चाहती हो?”

कल्याणी ने कहा, “मुझे दूध पीने की आज्ञा नहीं दीजिएगा। कोई बाधा है। मैं नहीं पिऊँगी।”

वनवासी ने बड़े करुण स्वर से कहा, “कौन-सी बाधा है, मुझसे कहो, मैं वनवासी ब्रह्मचारी हूँ। तुम मेरी लड़की हो, तुम्हारी ऐसी कौन-सी बात है जो मुझसे नहीं कहोगी? मैं जब वन से तुम्हें बेहोश हालत में उठा लाया, उस समय मालूम हुआ था—तुम भूख और प्यास की मारी हो, तुम नहीं खाओ-पिओगी तो बचोगी किस तरह?”

तब कल्याणी ने टपकते आँसुओं से कहा, “आप देवता हैं, आपसे कहूँगी—मेरे पति इस समय तक बिना खाये हुए हैं, उनसे मुलाक़ात बिना हुए या उनके खाने की ख़बर बिना सुने मैं किस तरह खाऊँ-पिऊँगी?”

ब्रह्मचारी ने पूछा, “तुम्हारे पति कहाँ हैं?”

कल्याणी ने कहा, “यह मुझे नहीं मालूम। उनके दूध की तलाश में निकलने पर चोर मुझे उठाकर ले आये हैं।” फिर ब्रह्मचारी ने एक एक सवाल करते हुए कल्याणी और उनके पति का कुल हाल मालूम किया। कल्याणी ने पति का नाम नहीं कहा, कह नहीं सकती, परन्तु और और परिचय के बाद ब्रह्मचारी समझ गये। पूछा, “क्या तुम्हीं महेन्द्र की पत्नी हो?” कल्याणी चुप रहकर जिस आग में दूध गर्म हुआ था, सर झुकाकर उसमें

लकड़ी लगाई। तब ब्रह्मचारी ने कहा, “तुम मेरी बात मानो, दूध पियो, मैं तुम्हारे पति की खबर लाता हूँ। तुम दूध नहीं पियोगी तो मैं नहीं जाऊँगा।” कल्याणी ने पूछा, “क्या यहाँ थोड़ा-सा पानी होगा?” ब्रह्मचारी ने पानी का घड़ा दिखा दिया। कल्याणी ने ऋजलि बढ़ाई, ब्रह्मचारी ने ऋजलि पर पानी ढाल दिया। जल को वह ब्रह्मचारी के पैरों के पास ले जाकर कल्याणी ने कहा, “आप इसमें पैर की धूल दीजिए।” ब्रह्मचारी ने ऋगूठे से पानी छू दिया। कल्याणी ने वह पानी पिया और कहा, “मैंने अमृतपान किया—अब और कुछ खाने के लिए नहीं कहिएगा—पति का संवाद पाये बिना मैं और कुछ नहीं खाऊँगी।” तब ब्रह्मचारी ने कहा, “इस देवालय में तुम निडर होकर रहो, मैं तुम्हारे पति की तलाश में चला।”

छठा परिच्छेद

रात बहुत हुई है। चाँद सर पर है। पूरा चाँद नहीं, चाँदनी उतनी निखरी नहीं। एक बहुत चौड़े प्रान्तर पर वह अँधेरी छाँहवाली अस्पष्ट चाँदनी पड़ी है। उस चाँदनी में प्रान्तर का आर-पार नहीं देख पड़ता। प्रान्तर जैसे बिलकुल जनशून्य है, भय की वासभूमि मालूम दे रहा है। उसी प्रान्तर से मुर्शिदाबाद-कलकत्ता जाने का रास्ता है। रास्ते के किनारे एक छोटी पहाड़ी है। पहाड़ी पर बहुत-से आम आदि के पेड़ हैं। पेड़ों के सिरे चाँदनी में झलमलाते हुए थर-थर काँप रहे हैं। ब्रह्मचारी उस पहाड़ी की चोटी पर चढ़कर खड़े हुए स्तब्ध होकर सुनने लगे—क्या सुनने लगे, मैं नहीं कह सकता। उस अनन्त जैसे प्रान्तर में कोई शब्द नहीं; केवल पेड़ों का रमरम-शब्द है। एक जगह पहाड़ी के मूल के पास बड़ा जङ्गल है। ऊपर पहाड़ी, नीचे आनरास्ता, बीच में वह जङ्गल। वहाँ कैसा शब्द हुआ, मैं कह नहीं सकता, ब्रह्मचारी उसी तरफ़ गये। घने जङ्गल में प्रवेश किया, देखा, उस वन में पेड़ों के अँधेरे के नीचे क्रतार की क्रतार पेड़ों के तने के पास आदमी बैठे हुए हैं। आदमी लम्बे आकार के, काले और सशस्त्र हैं; पेड़ों के छेदों से छनती हुई चाँदनी में उनके मार्जित अस्त्र झलमला रहे हैं। ऐसे दो सौ आदमी बैठे हैं—एक बात भी नहीं कर रहे। धीरे धीरे उनके बीच में जाकर ब्रह्मचारी ने कौन एक इशारा किया—कोई उठा नहीं, किसी ने एक बात नहीं की, किसी ने कोई शब्द नहीं किया। वे सबके सामने से सबको देखते हुए गये, जैसे किसी को खोज रहे हैं, पा नहीं रहे। खोजते-खोजते एक आदमी को पहचानकर उसका बदन झुकर इशारा किया। इशारा करते ही वह उठा। ब्रह्मचारी उसे लेकर दूर आकर खड़े हुए। यह आदमी नौजवान है। घनी काली दाढ़ी-मूछों से मुँह ढका

हुआ है। तन्दुस्त बड़ा सुन्दर जवान है। गेरुए कपड़े पहने हुए, सब अङ्गों में चन्दन लिस है। ब्रह्मचारी ने इससे कहा, “भवानन्द, महेन्द्रसिंह की कोई खबर रखते हो ?”

तब भवानन्द ने कहा, “महेन्द्रसिंह आज सुबह अपनी स्त्री और कन्या को लेकर घर छोड़कर जा रहा था, चट्टी में—”

यहाँ तक कहने पर ब्रह्मचारी ने कहा, “चट्टी में जो कुछ घटित हुआ है, वह जानते हैं। किसने किया ?”

भवानन्द—गाँव के किसान हैं शायद। इस समय सब गाँवों के किसान-मजूर पेट की जलन से डाकू हो गये हैं। आज-कल कौन डाकू नहीं ? हम लोगों ने आज लूटकर खाया है—कातवाल साहब का दो मन चावल जा रहा था, छीनकर वैष्णवों के भोग में लगाया है।

ब्रह्मचारी ने हँसकर कहा, “चोरों के हाथ से मैंने उसकी स्त्री-कन्या को बचाया है। इस समय उन्हें मठ में रख आया हूँ। अब तुम पर भार है कि महेन्द्र को खोजकर उसकी स्त्री-कन्या को उसके ज़िम्मे कर आओ। यहाँ जीवानन्द के रहने से काम निकल जायगा।”

भवानन्द स्वीकृत हुए। ब्रह्मचारी तब दूसरी जगह गये।

—

सातवाँ परिच्छेद

चट्टी में बैठे बैठे सोचते रहने से कोई फल नहीं होगा, यह विचार कर महेन्द्र उठे। शहर में जाकर अफसरों की मदद से लड़की और स्त्री की खोज करेंगे, इस विचार से उसी तरफ चले। कुछ दूर चलकर रास्ते पर देखा, कुछ बैलगाड़ियों को घेरकर कुछ सिपाही जा रहे हैं।

११७६ साल में बङ्गाल पर अंगरेजों का शासन नहीं हुआ। अंगरेज तब बङ्गाल के दीवान थे। वे कर वसूल कर लेते थे, परन्तु उस समय तक बङ्गालियों के धन-जन आदि की रक्षा और देख-रेख का भार पापिष्ठ, नराधम, विश्वासघातक, मनुष्यकुल-कलङ्क मीरजाफर पर था। मीरजाफर आत्मरक्षा में अन्तम बङ्गाल की रक्षा किस तरह करता ? वह मदक पीता और सोता था। अंगरेज कर वसूल करते और डिस्पैच लिखते थे। बङ्गाली रोते और मिट्टी में मिलते थे।

अस्तु बङ्गाल का कर अंगरेजों का प्राप्य था, परन्तु शासन का भार नवाब पर था। जहाँ-जहाँ अंगरेज अपना प्राप्य कर आप वसूल करते थे, वहाँ उन्होंने एक एक कलक्टर नियुक्त कर रक्खा था। परन्तु कर वसूल होकर कलकत्ता जाता था। आदमी चाहे भूखों मर जायँ, लेकिन लगान की वसूली नहीं बन्द होती थी। फिर भी वैसी वसूली नहीं हुई, क्योंकि माता वसुमती धन पैदा न करें तो कोई गढ़ नहीं सकता। कुछ हो, जो कुछ वसूल हुआ है, वह गाड़ी में लदकर सिपाहियों के पहरों में कलकत्ता कम्पनी के खज़ाने में जा रहा था। आजकल डाकुओं का डर बहुत बढ़ा हुआ है, इसलिए हथियारबन्द पचास सिपाही गाड़ी के आगे-पीछे क्रतारों में सज्जोन चढ़ाये हुए चल रहे थे। धूप के कारण सिपाही दिन को रास्ता नहीं चलते,

रात को चलते हैं। चलते चलते उस खज़ाने की गाड़ी और सिपाहियों से महेन्द्र की गति रुकी। सिपाहियों और बैलगाड़ी से रास्ता रुका देखकर महेन्द्र एक बगल हाँ गये, फिर भी सिपाही उन पर चढ़कर जैसे चलने को हुए, यह देखकर और यह तकरार का समय नहीं, सोचकर वे रास्ते के किनारे जङ्गल की बगल में उतरकर खड़े हुए।

तब एक सिपाही ने कहा, “यह एक डाकू भग रहा है।” महेन्द्र के हाथ में बन्दूक देखकर उसका यह विश्वास टूट रहा गया। खड़े रहकर उसने महेन्द्र का गला पकड़ा और “साले, चोर” कहकर एकाएक एक घूँसा मारा और बन्दूक छीन ली। महेन्द्र खाली हाथ थे, सिर्फ़ घूँसा वापस किया। महेन्द्र को गुस्सा कुछ ज्यादा आ गया था, कहना अत्युक्ति है। घूँसा खाकर सिपाही घूमकर बेहोश होकर रास्ते पर गिर गया। तब तीन-चार सिपाही आकर महेन्द्र को पकड़कर ज़बरदस्ती खींचकर सेनापति साहब के पास ले गये और साहब से कहा कि इस आदमी ने एक सिपाही का खून किया है। साहब पाइप पी रहे थे, कहा, “साले को पकड़कर शादी करो।” सिपाही समझ नहीं सके कि बन्दूक लिये डाकू से वे किस तरह शादी करेंगे। परन्तु, नशा उतरने पर साहब का मत बदलेगा, शादी नहीं करनी होगी, सोचकर तीन-चार सिपाहियों ने बैलगाड़ी की रस्सी से महेन्द्र के हाथ-पैर बाँधकर गाड़ी पर रख दिया। महेन्द्र ने देखा, इतने आदमियों में हाथा-पाई करना व्यर्थ है, और बलपूर्वक मुक्ति पाने पर भी क्या होगा? लड़की और स्त्री के बिछोह से महेन्द्र उस समय दुखी थे, बचने की कोई इच्छा नहीं थी। सिपाहियों ने महेन्द्र को अच्छी तरह गाड़ी के पहिये से बाँधा। फिर जिस तरह सिपाही खज़ाना लिये जा रहे थे, उसी तरह मृदु गम्भीर पद से चले।

आठवाँ परिच्छेद

ब्रह्मचारी की आज्ञा पाकर भवानन्द मन्द-मन्द स्वर से हरिनाम करते हुए जिस चट्टी में महेन्द्र बैठे थे, उसकी तरफ चले। वहीं महेन्द्र की खोज की जा सकती है, सोचा।

उस समय आँगरेजों के बनवाये रास्ते नहीं थे। नगरों से कलकत्ता आने पर मुसलमान सम्राट् के बनवाये अपूर्व रास्ते से आना पड़ता था। महेन्द्र भी पदचिह्न से नगर जाते हुए दक्षिण से उत्तर जा रहे थे। इसी लिए रास्ते में सिपाहियों से भेंट हुई थी। भवानन्द ताल-पहाड़ से जिस चट्टी की तरफ चले, वह भी दक्षिण से उत्तर थी। चलते-चलते जल्द धनरत्नों से मुलाक़ात हुई। उन्होंने भी महेन्द्र की तरह सिपाहियों को रास्ता छोड़ा। एक तो सिपाहियों का सहज विश्वास था कि यह चालान लूटने के लिए डाकू अवश्य कोशिश करेंगे, इस पर रास्ते में एक डाकू को उन्होंने गिरफ़ार किया है; फलतः भवानन्द को रात के समय फिर बग़ल होते देखकर उन्हें विश्वास हुआ कि यह और एक डाकू है। सिपाहियों ने उन्हें भी उसी वक्त पकड़ लिया।

भवानन्द मधुर-मधुर हँसकर बोले, “क्यों जी, क्या है ?”

सिपाही ने कहा, “तुम साले डाकू हो।”

भवानन्द—देख रहे हो, भगवा पहने हुए ब्रह्मचारी हूँ मैं, डाकू क्या ऐसा ही होता है ?

सिपाही—बहुत साले ब्रह्मचारी-सैन्यासी डाका डालते हैं।

यह कहकर सिपाही भवानन्द के गले में धक्के लगाता ले चला।

भवानन्द की आँखें उस आँधेरे में जल उठीं, परन्तु वे और कुछ न कहकर बड़े विनीतभाव से बोले, “मालिक, क्या करना होगा, हुक्म दीजिए।”

सिपाही भवानन्द की विनय से सन्तुष्ट होकर बोला, “लो साले, सर पर एक गट्टर लो।” यह कहकर सिपाही ने भवानन्द के सर पर एक गट्टर रख दिया। तब एक दूसरे सिपाही ने उससे कहा, “नहीं भगेगा। उस साले को जहाँ बाँध रक्खा है, इस साले को भी गाड़ी पर वहीं बाँध रखो।” भवानन्द को तब और भी कौतूहल हुआ कि किसे बाँध रक्खा है, देखूँगा। तब भवानन्द ने सर की गठरी फेंककर जिस सिपाही ने सर पर गठरी रखी थी, उसके गाल में एक तमाचा मारा। फलतः सिपाही ने भवानन्द को भी बाँधकर गाड़ी पर चढ़ाकर महेन्द्र के पास डाल दिया। भवानन्द ने पहचाना कि ये महेन्द्र-सिंह हैं।

सिपाही फिर अन्यमनस्क होकर कैलाहल करते हुए चले। बैलगाड़ी के पहिये कचर-कचर आवाज़ करने लगे। तब भवानन्द ने धीरे धीरे, केवल महेन्द्र सुन सकें, ऐसे स्वर से कहा, “महेन्द्रसिंह, मैं तुम्हें पहचानता हूँ, तुम्हारी मदद के लिए मैं यहाँ आया हुआ हूँ। मैं कौन हूँ, तुम्हें यह जानने की ज़रूरत नहीं। मैं जो कुछ कहता हूँ, सावधानी से करो। अपने हाथ का बँधना गाड़ी के पहिये पर रखो।”

महेन्द्र विस्मित हुए। परन्तु बिना कुछ बोले भवानन्द के कहने के अनुसार काम किया। आँधेरे में गाड़ी के पहिये के पास कुछ सरककर हाथों का बँधना गाड़ी के पहिये से जुलाया। पहिये की रगड़ से क्रमशः रस्सी कट गई। इसके बाद पैरोंवाली रस्सी उसी तरह काटी। इस तरह बन्धन से मुक्त होकर भवानन्द के परामर्श से बिना हिले-डुले गाड़ी पर पड़े रहे। भवानन्द ने भी उसी तरह अपने बँधने काटे। दोनों चुप रहे।

जहाँ उस जङ्गल के पास आम सड़क पर खड़े ब्रह्मचारी ने चारों ओर निगाह दौड़ाकर देखा था, वहीं इनका जाने का रास्ता था। उस पहाड़ के

पास पहुँचने पर सिपाहियों ने देखा कि पहाड़ के नीचे एक टीले पर एक आदमी खड़ा है। चाँदनी से चमकते हुए नीले आकाश में उसका श्याम शरीर चित्रित है, देखकर हवलदार ने कहा, “एक साला और भी है वह। उसे पकड़ लाओ। मोट दोगेगा। तब एक सिपाही पकड़ने के लिए दौड़ा, वह आदमी स्थिर खड़ा हुआ, हिलता नहीं। सिपाही ने उसे पकड़ा, उसने कुछ कहा नहीं। उसे पकड़कर हवलदार के पास ले आया, फिर भी वह कुछ नहीं बोला। हवलदार ने कहा, “उसके सर पर गट्टर रखो।” सिपाही ने उसके सर पर गट्टर रखवा। उसने गट्टर ले लिया। तब हवलदार घूमकर गाड़ी के पीछे चला। इसी समय एकाएक पिस्तौल की आवाज़ हुई। हवलदार के सर पर गोली बैठी, वह गिर गया और वहाँ मर गया। “इस साले ने हवलदार को मारा” कहकर एक सिपाही ने मोटिये का हाथ पकड़ा। मोटिये के हाथ में तब भी पिस्तौल था। उसने मोट फेंककर पिस्तौल उलटकर सिपाही के सर पर मारा। सिपाही का सर फूट गया, वह निस्त हुआ। इसी समय ‘हरि ! हरि ! हरि !’ शब्द करके दो सौ शस्त्रधारी आ गये और सिपाहियों के घेर लिया। सिपाही तब साहब के पहुँचने की राह देख रहे थे। डाकू आये सोचकर साहब भी जल्द गाड़ी के पास आये और गाड़ी के घेरकर चौकार होने की आज्ञा दी। अंगरेज़ का विपत्ति के समय नशा उतर जाता है। उसी वक्त सिपाही चारों तरफ से सामने होकर चौकोर खड़े हुए। अध्यक्ष की फिर आज्ञा होने पर उन लोगों ने बन्दूक उठाई। इसी समय एकाएक साहब की कमर से उनकी तलवार किसी ने छीन ली। लेकर एक ही वार से उनका सर जुदा कर दिया। सर कट जाने पर साहब धोड़े से गिर गये, फिर बन्दूक चलने का हुकम देना नहीं हुआ। सबने देखा, एक आदमी गाड़ी पर खड़ा तलवार लिये, ‘हरि हरि’ शब्द कर रहा है और ‘सिपाही मार, सिपाही मार’ कह रहा है। वह भवानन्द थे !

एकाएक अध्यक्ष का सर कट गया, देखकर और रत्ता के लिए किसी से

आज्ञा न पाने पर सिपाही कुछ देर तक डरे हुए चुपचाप खड़े रहे। इस अवसर में तेजस्वी दस्युओं ने उनमें से बहुतां का हत और आहत करके गाड़ी के पास आकर रुपये के सन्दूक अपने कब्जे में कर लिये। सिपाहियों का उत्साह टूट गया, वे भग खड़े हुए।

तब जो आदमी ठीले पर खड़ा था और अन्त में युद्ध का प्रधान नेतृत्व लिया था, वह भवानन्द के पास आया। दोनों ने आलिङ्गन किया। भवानन्द ने कहा, “भाई जीवानन्द, तुमने सार्थक व्रत लिया था।”

जीवानन्द ने कहा, “भवानन्द ! तुम्हारा नाम सार्थक हो।” लूटा हुआ धन ठिकाने करने की व्यवस्था में जीवानन्द लगे, अपने अनुचरों के साथ वे जल्द दूसरी जगह चले गये। भवानन्द अकेले खड़े रहे।

नवाँ परिच्छेद

महेन्द्र गाड़ी से उतरकर एक सिपाही का हथियार छीनकर युद्ध में शरीक होने को थे, परन्तु ऐसे समय उन्हें साफ़ मालूम दिया कि ये लोग डाकू हैं; धन लूटने के लिए ही सिपाहियों पर हमला किया है। ऐसा विचार कर वे लड़ाई की जगह से हटकर खड़े हुए। क्योंकि डाकुओं की सहायता करने पर उनके दुराचार का हिस्सा लेना होगा। वे तलवार डालकर धीरे धीरे वह जगह छोड़कर जा रहे थे, ऐसे समय भवानन्द उनके पास आकर खड़े हुए। महेन्द्र ने पूछा, “महाशय, आप कौन हैं ?”

भवानन्द ने कहा, “तुम्हें इसकी क्या ज़रूरत ?”

महेन्द्र—मुझे कुछ आवश्यकता है। आज आपसे बड़ा उपकार हुआ है।

भवानन्द—यह ज्ञान तुम्हें है, ऐसा नहीं मालूम दिया—तलवार लेकर फिर दूर ही खड़े रहे—ज़मीन्दार के लड़के धी-दूध पचाने में पटु हो, काम के वक्त बन्दर।

भवानन्द की बात खत्म होते न होते महेन्द्र ने घृणा से कहा—“यह कुकर्म जो है—डाका।”

भवानन्द ने कहा, “डाका सही; पर हम लोगों ने तुम्हारा कुछ उपकार किया है। और भी कुछ उपकार करने की इच्छा रखते हैं।”

महेन्द्र—तुम लोगों ने मेरा कुछ उपकार अवश्य किया है, परन्तु और क्या उपकार करोगे ? और डाकू के पास इतना उपकृत होने से मेरा अनुपकृत रहना अच्छा है।

भवानन्द—उपकार लो या न लो, तुम्हारी इच्छा पर है। यदि इच्छा हो, मेरे साथ आओ; तुम्हारी स्त्री और कन्या से तुम्हें मिला दूँगा।

महेन्द्र घूमकर खड़े हो गये, बोले, “वह कैसे ?”

भवानन्द इस बात का जवाब दिये बिना चले। लाचार, महेन्द्र भी साथ साथ चले। सोचते रहे, “ये लोग कैसे डाकू हैं ?”

दसवाँ परिच्छेद

उसी चाँदनी रात में दोनों प्रान्तर पार करते हुए चले। महेन्द्र नीरव, शोक से कातर, गर्वित, कुछ कौतूहली हैं।

भवानन्द ने एकाएक दूसरी मूर्ति धारण की। वह स्थिर-मूर्ति धोर-प्रकृति संन्यासी अब नहीं; वह रण-निपुण वीर-मूर्ति, सेनाध्यक्ष का सर उतार लेनेवाली मूर्ति अब नहीं। जैसे ज्योत्स्नामयी शान्तिशालिनी प्रान्तर-वन-पहाड़-नदीवाली प्रकृति देखकर उनके चित्त को विशेष स्फूर्ति हुई। जैसे समुद्र चन्द्रोदय से हँसा हो। भवानन्द हँसमुख, सवाक्, प्रियभाषी हुए। बातचीत के लिए बड़े उतावले। भवानन्द ने बातचीत के लिए बड़े प्रयत्न किये, लेकिन महेन्द्र ने बातचीत नहीं की। तब भवानन्द निरुप्राय होकर आप ही आप गाने लगे—

“वन्दे मातरम्।

सुजलां सुफलां मलयजशीतलाम्

शस्यश्यामलां मातरम्।”

महेन्द्र गीत सुनकर कुछ तन्मय-जुब में आये, मगर समझ नहीं सके—
सुजला, सुफला, मलयजशीतला शस्यश्यामला माता कौन हैं? पूछा, “माता कौन हैं?” जवाब दिये बिना भवानन्द गाने लगे—

“शुभ्र-ज्योत्स्ना-पुलकित-ग्रामिनीम्

फुल्ल-कुसुमित-द्रुमदलशोभिनीम्

सुहासिनीं सुमधुरभाषिणीम्

सुखदां वरदां मातरम्॥”

महेन्द्र ने कहा, “यह तो देश है, यह तो मा नहीं।”

भवानन्द ने कहा, “हम दूसरी मा नहीं मानते। जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी। हम कहते हैं जन्मभूमि ही जननी है; हमारे मा नहीं, बाप नहीं, भाई नहीं,—छो नहीं, पुत्र नहीं, घर नहीं, द्वार नहीं, हमारे है सिर्फ वही सुजला, सुफला, मलयज-समीरण-शीतला, शस्य-श्यामला—”

तब समझकर महेन्द्र ने कहा, “तो फिर गाओ।” भवानन्द ने फिर गाया—

“वन्दे मातरम् ।

सुजलां सुफलां मलयजशीतलाम्

शस्यश्यामलां मातरम् ।

शुभ्र-ज्योत्स्ना-पुलकित-यामिनीम्,

फुल्ल-कुसुमित-द्रुमदलशोभिनीम्,

सहासिनीं सुमधुरभाषिणीम्,

सुखदां वरदां मातरम् ॥

सप्तकोटिकण्ठ-कलकल-निनाद-कराले,

द्विसप्तकोटिभुजैर्धृत-खर-करवाले,

अबला केन मा एत बले ।

बहुबलधारिणीं नमामि तारिणीम्

रिपुदलवारिणीं मातरम् ॥

तुमि विद्या तुमि धर्म,

तुमि हृदि तुमि मर्म,

त्वं हि प्राणाः शरीरे ।

बाहुते तुम मा शक्ति,

हृदये तुमि मा भक्ति,

तोमारइ प्रतिमा गड़ि मन्दिरे-मन्दिरे ।

त्वं हि दुर्गा दशप्रहरणधारिणी,

कमला कमलदलविहारिणी
वाणी विद्यादायिनी, नमामि त्वां
नमामि कमलाममलामगुलाम्,
सुजलां सुफलां मातरम्
वन्दे मातरम्
श्यामलां सरलां सुस्मितां भूषिताम्
धरणीं भरणीं मातरम् ॥”

महेन्द्र ने देखा, दस्यु गाते-गाते रोने लगा, महेन्द्र ने तब सविस्मय पूछा,
“तुम लोग कौन हो ?”

भवानन्द ने कहा, “हम लोग सन्तान हैं।”

महेन्द्र—सन्तान क्या ? किसके सन्तान ?

भवानन्द—मा के सन्तान।

महेन्द्र—अच्छा, सन्तान क्या चोरी करके डाका डालकर मा की पूजा करते
हैं ? वह कैसी मातृभक्ति है ?

भवानन्द—हम लोग चोरी नहीं करते, डाका नहीं डालते।

महेन्द्र—अभी-अभी तो गाड़ी लूटी ?

भवानन्द—वह क्या चोरी-डाका है ? किसका रुपया लूटा ?

महेन्द्र—क्यों, राजा का।

भवानन्द—राजा का ? यह रुपया जो वह लेगा, इस पर उसका क्या
अधिकार है ?

महेन्द्र—राजा का राजभाग है।

भवानन्द—जो राजा राज्यपालन नहीं करता, वह फिर राजा क्या है ?

महेन्द्र—तुम लोग सिपाहियों की तापों के सामने किसी दिन उड़
जाओगे, देखता हूँ।

भवानन्द—बहुत सारे सिपाही देखे हैं, आज भी देखे।

महेन्द्र—अच्छी तरह नहीं देखा, एक दिन देखोगे ।

भवानन्द—देखा न हो, लेकिन एक दफे के अलावा दो दफे तो नहीं मरेंगे ?

महेन्द्र—परन्तु इच्छापूर्वक मरने से फायदा ?

भवानन्द—महेन्द्रसिंह ! मेरी धारणा थी कि तुम आदमी-जैसे आदमी हो, लेकिन अब देखा, सब जैसे हैं, तुम भी वैसे हो, सिर्फ घी-दूध के बहादुर हो; देखो, साँप मिट्टी पर छाती के बल रेंगता है, उससे नीच जीव मैंने तो और नहीं देखा, लेकिन उसकी गर्दन पर पैर रखने पर वह भी फन काढ़कर खड़ा हो जाता है । तुम्हारा क्या किसी तरह भी धर्म नहीं झूटता ? देखा, जितने देश हैं—मगध, मथिला, काञ्ची, काशी, दिल्ली, काश्मीर, किस देश की ऐसी दुर्दशा है ?—किस देश के आदमी खाने को न पाकर घास खाते हैं ? काँटे खाते हैं, बाँबी की मिट्टी खाते हैं, लता की पत्तियाँ खाते हैं ? किस देश के आदमी स्यार-कुत्ते खाते हैं, मुर्दा खाते हैं ? किस देश के आदमियों को सन्दूक में रुपये रखकर स्वस्ति नहीं, सिंहासन पर शालग्राम रखकर चैन नहां, घर में लड़की-बहू रखकर भरोसा नहीं ?—लड़की-बहू के पेट में बच्चा रहने पर भरोसा नहीं; पेट चीरकर बच्चा निकालते हैं ? सब देशों के राजों में देख-रेख का सम्बन्ध है । हमारे मुसलमान राजा कहाँ रक्षा करते हैं ? धर्म गया, जाति गई, मान गया, अब तो प्राण भी जा रहे हैं । इन नशेबाज़ मुसलमानों को बगैर भगाये क्या हिन्दुओं की हिन्दुआनी रहती भी है ?

महेन्द्र—किस तरह भगाओगे ?

भवानन्द—मारकर ।

महेन्द्र—तुम अकेले भगाओगे ? एक चाँटे से ?

दस्यु ने गाया—

“सप्तकोटिकण्ठ-कलकल-निनाद-कराले,

द्विसप्तकोटिभुजैर्धृत-खरकरवाले,

अबला केन मा एत बले ?”

महेन्द्र—मगर देख रहा हूँ, तुम अकेले हो ।

भवानन्द—कैसे, अभी अभी तो तुमने दो सौ आदमी देखे हैं ।

महेन्द्र—क्या वे सब सन्तान हैं ?

भवानन्द—सब सन्तान है ।

महेन्द्र—और कितने हैं ?

भवानन्द—ऐसे हजारों; क्रमशः और होंगे ।

महेन्द्र—माना, दस-बीस हजार हुए, इससे क्या मुसलमानों का राज्य ले सकोगे ?

भवानन्द—पलासी में आंगरेजों की कितनी फौज थी ?

महेन्द्र—आंगरेज और बङ्गाली ?

भवानन्द—नहीं क्यों ? देह की ताकत कितना काम करती है—देह में ज्यादा ताकत रही तो क्या गोले भी ज्यादा तेज चलते हैं ?

महेन्द्र—तो फिर आंगरेज और मुसलमानों में इतना फर्क क्यों ?

भवानन्द—देखो, आंगरेज जान निकल जाने पर भी नहीं भगता, मुसलमान पसीना निकलने पर भग खड़ा होता है, शरबत खोजता फिरता है; और, इसके अलावा, आंगरेज में ज़िद है—जो कुछ पकड़ता है, वह करता है, मुसलमान ढीला है । फिर, रुपये के लिए जान देना है, पर सिपाही तनख्वाह नहीं पाते । इसके बाद आखिरी बात है हिम्मत, तोप का गोला एक जगह के अलावा दस जगह नहीं गिरेगा—इसलिए, एक गोला देखकर दस आदमियों के भगने की ज़रूरत नहीं । परन्तु एक गोला देखने पर मुसलमानों का कुनवा भर भग खड़ा होता है । और गोलों की भरमार देखकर तो एक भी आंगरेज नहीं भगता ।

महेन्द्र—तुम लोगों में ये सब गुण हैं ?

भवानन्द—नहीं, परन्तु गुण पेड़ से नहीं गिरते। अभ्यास करना पड़ता है।

महेन्द्र—तुम लोग क्या अभ्यास करते हो ?

भवानन्द—देखते नहीं ? हम लोग संन्यासी हैं। हमारा संन्यास इसी अभ्यास के लिए है। काम पूरा होने पर, अभ्यास सध जाने पर, हम लोग फिर गृही होंगे। हमारे भी स्त्री-कन्या हैं।

महेन्द्र—तुम लोग यह सब छोड़कर माया से किनारा कर सके हो ?

भवानन्द—सन्तान को भूठ नहीं कहना चाहिए—तुम्हारे पास भूठ की बड़ाई नहीं करूँगा। माया से किनारा कौन कर सकता है ? जो कहता है—मैं किनारा कर चुका हूँ, या तो उसके कभी माया नहीं थी, या वह भूठ की हाँकता है। हम लोग माया से किनारा नहीं करते, हम व्रत की रक्षा करते हैं। तुम सन्तान होगे ?

महेन्द्र—अपनी स्त्री-कन्या की खबर पाये बिना मैं कुछ कह नहीं सकता।

भवानन्द—चलो, तो अपनी स्त्री-कन्या को देखो, चलो।

यह कहकर दोनों चले। भवानन्द फिर 'वन्दे मातरम्' गाने लगे। महेन्द्र का गला अच्छा था, संगीत में कुछ गति और अनुराग था, इसलिए साथ गाने लगे। देखा कि गाते-गाते आँखों में आँसू आते हैं। तब महेन्द्र ने कहा, "यदि स्त्री-कन्या न छोड़नी पड़े तो यह व्रत मुझे दो।"

भवानन्द—जो यह व्रत ग्रहण करता है, वह स्त्री-कन्या छोड़ता है। तुम अगर यह व्रत ग्रहण करो तो स्त्री-कन्या से मुलाकात नहीं कर पाओगे। उनकी रक्षा का उचित प्रबन्ध किया जायगा। परन्तु व्रत की सफलता तक उनका मुँह देखना मना है।

महेन्द्र—मैं यह व्रत नहीं लूँगा।

ग्यारहवाँ परिच्छेद

रात बीत चुकी है। वह निजंन अरण्य अब तक अन्धकार, शब्दहीन था, अब आलोकमय और पक्षियों के कूजन से शब्दित होकर आनन्दमय हो गया। उसी आनन्दमय प्रभात में—आनन्दमय कानन में ‘आनन्दमठ’ में सत्यानन्द महाराज हरिण-चर्म पर बैठे हुए हैं, संध्यापूजन कर रहे हैं। पास जीवानन्द बैठे हुए। ऐसे समय भवानन्द महेन्द्रसिंह को साथ लेकर उपस्थित हुए। ब्रह्मचारी बिना कुछ कहे संध्यापूजन करते रहे। किसी ने कोई बातचीत करने की हिम्मत नहीं की। बाद को, संध्यापूजन समाप्त होने पर, भवानन्द और जीवानन्द दोनों ने उन्हें प्रणाम किया, और पदधूलि ग्रहण करके विनीतभाव से बैठे। तब सत्यानन्द भवानन्द को इशारे से बाहर बुला ले गये। क्या बातचीत हुई। यह हम लोग नहीं जानते। इसके बाद दोनों के मन्दिर में लौटने पर, ब्रह्मचारी ने करुण सहास्य मुख से महेन्द्र से कहा, “बेटा, तुम्हारे दुःख से हम लोग बहुत दुखी हुए हैं, केवल उस दीनबन्धु की कृपा से तुम्हारी स्त्री-कन्या को कल रात हम बचा सके हैं।” यह कहकर ब्रह्मचारी ने कल्याणी की रत्ना का हाल कहा। इसके बाद कहा, “चलो, वे लोग जहाँ हैं, वहाँ तुमको ले चलें।”

यह कहकर ब्रह्मचारी आगे-आगे, महेन्द्र पीछे-पीछे देवालय के भीतर गये। भीतर जाकर महेन्द्र ने देखा, बहुत फैला हुआ और बहुत ऊँचा कमरा है। इस नये सूर्य से खिलते हुए प्रभात में जब पास का कानन सूर्य की किरणों से हीरों से खचित जैसा जगमगा रहा है, तब भी उस विशाल कक्ष में प्रायः अँधेरा है। कमरे के भीतर क्या है, पहले-पहल महेन्द्र नहीं देख पाये; देखते-देखते क्रमशः देखा, एक बड़ी चतुर्भुजी मूर्ति है, शङ्ख-चक्र-गदा-पद्म लिये हुए,

हृदय में कौस्तुभ शोभित है, सामने सुदर्शन-चक्र घूमता हुआ स्थापित है। मधुकैटभ के रूप से दो बड़ी छिन्नमस्तक मूर्तियाँ, खून जैसे बह रहा हो इस तरह चित्रित होकर सामने हैं। बाईं ओर लक्ष्मी, मुक्तकुन्तला, कमलों की माला पहने हुए, त्रस्त हुई-सी खड़ी है, दाईं ओर सरस्वती पुस्तक और वीणा लिये हुए, मूर्तिमान् राग और रागिनियों से घिरी हुई खड़ी है। विष्णु की गोद में एक मोहिनी मूर्ति है—लक्ष्मी और सरस्वती से अधिक सुन्दरी, लक्ष्मी और सरस्वती से अधिक ऐश्वर्यवाली। गन्धर्व, किन्नर, देवता, यक्ष और रत्न उनकी पूजा कर रहे हैं। ब्रह्मचारी ने बहुत ही गम्भीर—बहुत ही डरे स्वर से पूछा “सब कुछ देख रहे हो ?” महेन्द्र ने कहा, “देख रहा हूँ।”

ब्रह्म०—विष्णु की गोद में क्या है, देखा है ?

महे०—देखा है। वे कौन हैं ?

ब्रह्म०—मा।

महे०—मा कौन ?

ब्रह्म०—हम जिनके सन्तान हैं।

महे०—वे कौन हैं ?

ब्रह्म०—समय पर पहचानोगे; कहो—वन्दे मातरम्। अब चलो, देखा, चलो।

तब ब्रह्मचारी महेन्द्र को दूसरे कमरे में ले गये। वहाँ महेन्द्र ने देखा, एक अपूर्व, आठों गाँठ से भरी-पूरी, सब गहने पहने हुए जगद्धात्री मूर्ति; महेन्द्र ने पूछा, ये कौन हैं ?

ब्रह्म०—मा—जो थीं।

महे०—वह क्या ?

ब्रह्म०—इन्होंने कुञ्जर, केशरी आदि वन्य पशुओं के पैरों के तले दलित कर वन्य पशुओं के वासस्थान में अपना पद्मासन प्रतिष्ठित किया है। ये सब

अलङ्कारों से भूषिता हास्यमयी सुन्दरी हैं। ये बाल-सूर्य की आभावाली, सब ऐश्वर्यों से भरी पूरी हैं। इन्हें प्रणाम करा।

महेन्द्र ने भक्ति-भाव से जगद्धात्री-रूपिणी मातृभूमि को प्रणाम किया, ब्रह्मचारी ने उन्हें एक अँधेरी सुरङ्ग दिखाकर कहा, “इस रास्ते आओ।”

ब्रह्मचारी स्वयं आगे-आगे चले। महेन्द्र सभय पीछे-पीछे चले। भूगर्भ के एक अँधेरे कमरे में कहीं से थोड़ा-सा प्रकाश आ रहा था। उस क्षीण प्रकाश में एक काली मूर्ति उन्होंने देखी।

ब्रह्मचारी ने कहा, “देखो, मा जो हुई हैं।”

महेन्द्र ने सभय कहा, “काली।”

ब्रह्म०—काली—अन्धकार-समाच्छन्ना कालिमामयी। सदैव हत है, इसी लिए नगना है। आज दश में सर्वत्र शमशान है—इसी लिए मा कङ्कालमालिनी हैं। अपना शिव अपने पैरों तले दलित कर रही हैं—हाय मा !

ब्रह्मचारी की आँखों से दर-विगलित आँसुओं की धारा गिरने लगी।

महेन्द्र ने पूछा, “हाथ में खटक-खप्पर क्यों ?”

ब्रह्म०—हम लोग मा के सन्तान हैं, अस्त्र मा के हाथ में यही दिया है—
कहो—वन्दे मातरम्।

‘वन्दे मातरम्’ कहकर महेन्द्र ने काली को प्रणाम किया। तब ब्रह्मचारी ने कहा, “इस रास्ते आओ।” यह कहकर वे दूसरी सुरङ्ग से चढ़ने लगे। एकाएक उनकी आँखों में प्रभात-सूर्य की किरणें उद्भासित हुईं। चारों ओर से मधुर ऋण्ट से चिड़ियाँ गा उठीं। दोनों ने देखा, सङ्गमावर के बने प्रशस्त मन्दिर के भीतर सोने की दश-भुजा प्रतिमा नवास्त्र-किरणों में ज्योतिर्मयी होकर हँस रही है। ब्रह्मचारी ने प्रणाम करके कहा, “ये मा जो होंगी। दस भुज दस आर प्रसारित हैं, उनमें नाना आयुधों के रूप से नाना शक्तियाँ शोभित हैं, पैरों के नीचे शत्रु विमर्दित है, पदाश्रित वीर-केशरी शत्रु-पोड़न कर रहा है। दिग्भुजा”—कहते-कहते सत्यानन्द गद्गद होकर रोने लगे। दिग्भुजा—

“नानाप्रहरणधारिणी शत्रु-विमर्दिनी—वीरेन्द्रपृष्ठविहारिणी—दायें लक्ष्मी भाग्यरूपिणी—बाय वारिणी विद्याविज्ञानदायिनी—साथ बलरूपी कार्तिकेय, कार्यसिद्धिरूपी गणेश ; आओ, हम दोनों माता को प्रणाम करें।” फिर दोनों जन हाथ जोड़कर ऊर्ध्वमुख होकर समस्वर से पुकारने लगे—

“सर्वमङ्गलमाङ्गल्ये शिवे सर्वार्थसाधिके ।

शरण्ये त्र्यम्बके गौरी नारायणि नमोऽस्तु ते ॥”

दोनों के भक्तिभाव स प्रणाम करके उठने पर महेन्द्र ने गद्गद कण्ठ से पूछा, “माता की यह मूर्ति कब देखने का मिलेगी ?”

ब्रह्मचारी ने कहा; “जब मा क सब सन्तान मा को मा कहकर पुकारेंगे, उसी दिन वे प्रसन्न होंगी

महेन्द्र ने सहसा पूछा, “मेरी स्त्री-कन्या कहाँ हैं ?”

ब्रह्म०—चलो, देखोगे, चलो ।

महेन्द्र—उन्हें सिर्फ़ एक दफ़ा देख कर मैं उन्हें बिदा करूँगा ।

ब्रह्म०—क्यों बिदा करोगे ?

महेन्द्र—मैं यह महामन्त्र ग्रहण करूँगा ।

ब्रह्म०—कहाँ बिदा करोगे ?

कुछ देर तक सोचकर महेन्द्र ने कहा, “मेरे घर में कोई नहीं, मेरे और जगह भी नहीं । इस महामारी के समय स्थान भी और कहाँ पाऊँगा ?”

ब्रह्म०—जिस रास्ते से यहाँ आये, उसी से मन्दिर के बाहर जाओ । मन्दिर के द्वार पर अपनी स्त्री-कन्या को देखोगे । कल्याणी ने अब तक कुछ खाया नहीं । जहाँ वे लोग बैठी हैं, वहीं खाने की चोज़ें मिलेंगी । उसे भोजन कराकर तुम्हारी जो इच्छा हो, करना । इस समय हममें से किसी से मुलाक़ात नहीं होगी । तुम्हारा मन यदि ऐसा ही रहेगा तो यथासमय तुमसे मुलाक़ात होगी ।

इसके बाद अकस्मात् ब्रह्मचारी न जाने किस रास्ते से अन्तर्हित हो

गये। महेन्द्र ने पहले के दिखलाये मार्ग से निकलकर देखा, नाट-मन्दिर में कल्याणी कन्या को लेकर बैठी हैं।

इधर सत्यानन्द एक दूसरी खुरङ्ग से उतरते हुए एक एकान्त भूगर्भ-कक्षा में गये। वहाँ जीवानन्द और भवानन्द रुपये गिन-गिनकर, तह की तह, लगा रहे थे। उस कमरे में सोने, चाँदी, ताँबे, हीरे और मोतियों की राशियाँ सजी लगी हुई थीं। विगत रात्रि की लूटवाले रुपये ये लोग सजाकर रख रहे थे। सत्यानन्द उस कमरे में पैठकर बोले, “जीवानन्द, महेन्द्र आयेगा। आने पर सन्तानों का खास तौर से उपकार होगा, क्योंकि, उसकी पूर्वपुरुषों से संचित की हुई अर्थराशि मा की सेवा में अर्पित होगी। परन्तु जितने दिन तक मन, वाणी और शरीर से वह मातृभक्त नहीं होता, उतने दिन तक उसे न लेना। तुम्हारे हाथ का काम समाप्त होने पर, तुम लोग भिन्न-भिन्न समय में उसका पीछा किये रहना, समय समझना तो उसे विष्णु-मण्डप में हाज़िर करना; और समय में या असमय में उन लोगों की रक्षा करना; क्योंकि जिस तरह दुष्ट का शासन सन्तान का धर्म है, उसी तरह शिष्ट की रक्षा भी धर्म है।”

बारहवाँ परिच्छेद

बड़े दुःख के बाद महेन्द्र और कल्याणी की मुलाक़ात हुई। कल्याणी रोकर लोट गई। महेन्द्र और भी रोये। रोने-धोने के बाद आँसू पोंछने की बारी आई। जितनी बार वे एक दूसरे के आँसू पोंछते थे, उतनी बार फिर आँसू उमड़ पड़ते थे। आँसू रोकने के इरादे से कल्याणी ने भोजन की बात चलाई। ब्रह्मचारी के अनुचर ने भोजन रख दिया है, कल्याणी ने महेन्द्र से खाने के लिए कहा। अकाल के दिन, अन्न और व्यञ्जन के मिलने की कोई सम्भावना नहीं, परन्तु देश में जो कुछ है, सन्तानों के पास वह सुलभ है। वह कानन साधारण मनुष्यों का अग्रगम्य है; जहाँ जिस पेड़ में जो फल होते हैं, उपवासी मनुष्य तोड़ खाते हैं। परन्तु इस अग्रगम्य अरण्य के पेड़ों के फल और कोई नहीं पाते, इसलिए ब्रह्मचारी का अनुचर बहुत से वन्य फल और कुछ दूध लाकर रख जा सका था। संन्यासी महाराजों की सम्पत्ति में बहुत-सी गायें थीं। कल्याणी के अनुरोध से महेन्द्र ने कुछ फल खाये। इसके बाद खाने से जो बचे, एकान्त में बैठकर कुछ कल्याणी ने खाये। दूध लड़की का थोड़ा-सा पिलाया, थोड़ा-सा उठाकर रख दिया, फिर पिलाने के लिए। इसके बाद नींद से दोनों सताये होने के कारण सोकर श्रम दूर करने लगे। नींद टूटने पर दोनों आलोचना करने लगे, “अब कहाँ जायँ ?” कल्याणी ने कहा, “घर में विपत्ति का विचार कर घर छोड़कर आये थे, अब देखती हूँ, घर से बाहर विपत्ति अधिक है। अब चलो, घर ही लौट चलें।” महेन्द्र की भी यही इच्छा है। महेन्द्र चाहते हैं, कल्याणी का घर में रखकर, किसी तरह एक अभिभावक नियुक्त करके, यह परम रमणीय अपार्थिव पवित्रता से भरा

मातृ-सेवा-व्रत लें। इसलिए वे सहज ही सम्मत हुए। फिर दोनों आदमी, विगतश्रम होकर, कन्या को गोद में लेकर, पदचिह्न की ओर चले।

परन्तु, किस रास्ते से पदचिह्न जाना होगा, उस दुर्भेद्य अरण्य में निश्चय नहीं कर सके। उन लोगों ने सोचा था, वन से बाहर निकलने पर रास्ता पायेंगे। पर वन से बाहर निकलने का रास्ता नहीं मिल रहा। देर तक वन के भीतर चक्कर काटते रहे, घूम-फिरकर उसी मठ में लौट आने लगे, निकलने का रास्ता नहीं मिल रहा। सामने एक वैष्णववेशधारी अपरिचित ब्रह्मचारी खड़े हँस रहे थे। देखकर महेन्द्र ने रुष्ट होकर पूछा, “गुसाईं जी, हँस क्यों रहे हो?”

गोस्वामी ने पूछा, “तुम लोग इस वन में पैठे किस तरह?”

महेन्द्र—जिस तरह भी हो, आ गये हैं।

गोसाईं—आ गये हो तो निकल क्यों नहीं सकते?

यह कहकर वैष्णव फिर हँसने लगे।

रुष्ट होकर महेन्द्र ने कहा, “तुम हँस रहे हो, तुम खुद निकल सकते हो?”

वैष्णव ने कहा—“मेरे साथ आओ, मैं रास्ता दिखा देता हूँ। तुम लोग ज़रूर किसी संन्यासी या ब्रह्मचारी के साथ पैठे होगे, नहीं तो इस मठ में आने या निकलने का रास्ता और कोई नहीं जानता।”

सुनकर महेन्द्र ने पूछा—“आप सन्तान हैं?”

वैष्णव ने कहा—“हाँ, मैं भी सन्तान हूँ। मेरे साथ आओ, तुम्हें रास्ता बताने के लिए ही मैं यहाँ खड़ा हूँ।”

महेन्द्र ने पूछा—“आपका नाम क्या है?”

वैष्णव ने कहा—“मेरा नाम है धीरानन्द गोस्वामी।”

यह कहकर धीरानन्द आगे-आगे चले, महेन्द्र और कल्याणी पीछे

पीछे । धीरानन्द बहुत ही दुर्गम रास्ते से उन्हें बाहर निकालकर अकेले फिर वन के भीतर पैडे ।

आनन्दारण्य से वे लोग बाहर आये तो कुछ दूर से वृक्षों का प्रान्तर शुरु हुआ । प्रान्तर एक ओर रहा । वन के किनारे-किनारे आम रास्ता ह । एक जगह अरण्य के भीतर से एक छोटी नदी कलकल करती हुई बह रही है । पानी बहुत साफ़, निविड़ मेघ जैसा काला । दोनों ओर श्यामल शोभामय नाना जाति के पेड़ नदी पर छाया किये हुए हैं । नाना जाति की चिड़ियाँ पेड़ों पर बैठी हुई कलरव कर रही हैं । वह रव, वह भी मधुर—नदी के कलरव से मिल रहा है । उसी तरह पेड़ों की छाया और जल का रंग मिल रहे हैं । कल्याणी का मन भी शायद उस छाया के साथ मिला । कल्याणी नदी के किनारे एक पेड़ के नीचे बैठी । पति को पास बैठने के लिए कहा । पति की गोद से कल्याणी ने कन्या को अपनी गोद में ले लिया । पति का हाथ हाथ में लेकर कुछ देर तक चुपचाप बैठी रहीं । बाद का पृछा, “तुम्हें आज मैं उदास देख रही हूँ । जो विपत्ति थी, उससे तो उद्धार पा गये हो, अब इतना विषाद क्यों है ?”

महेन्द्र ने लम्बी साँस छोड़कर कहा, “मैं अब अपना नहीं हूँ; मैं क्या करूँ, कुछ समझ में नहीं आ रहा ।”

कल्याणी—क्यों ?

महे०—तुम्हें खो देने पर मुझ पर जो बीती थी, सुनो ।

यह कहकर जो घटना घटी थी, महेन्द्र सविस्तर कह चले ।

कल्याणी ने कहा, “मुझे भी बड़े दुःख, बड़ी विपत्तियाँ भेलनी पड़ी हैं । तुम सुनकर और क्या करोगे ? भारी विपत्ति में भी मुझे किस तरह नींद आई थी, कह नहीं सकती, परन्तु मैं कल रात खत्म होते होते सोई थी । सोते हुए स्वप्न देखा था । देखा—किस पुण्य से, कह नहीं सकती—मैं एक अपूर्व जगह गई हुई हूँ । वहाँ मिट्टी नहीं, सिर्फ़ रजाला है, बहुत ही शीतल—

बादलों के बीच से निकलते उजाले की तरह बड़ा मधुर उजाला । वहाँ आदमी नहीं, सिर्फ प्रकाश की मूर्तियाँ हैं, वहाँ शब्द नहीं, केवल बहुत दूर जैसे कैसा मधुर गीत-वाद्य हो रहा है, ऐसा एक शब्द । सदा जैसे नई खली हुई हैं, ऐसी लाखों मल्लिका, मालती और गन्धराजों की खुशबू । वहाँ जैसे सबके ऊपर, सबके दर्शनीय स्थान पर, कोई बैठे हैं, जैसे नील पर्वत अग्नि-प्रभ होकर भीतर मन्द मन्द जल रहा है । अग्निमय बृहत् किरीट उनके मस्तक पर । जैसे उनके चार हाथ हैं । उनके दोनों तरफ क्या है मैं पहचान नहीं सकी, जैसे स्त्रीमूर्तियाँ हों; परन्तु इतना रूप, इतनी ज्योति, इतना सौरभ कि मैं उस तरफ देखते ही विह्वल होने लगी; निगाह नहीं उठा सकी, देख नहीं सकी कि कौन हैं । जैसे उस चतुर्भुज के सामने खड़ी हुई एक और स्त्री-मूर्ति है, वह भी ज्योतिर्मयी । परन्तु चारों ओर मेघ हैं, आभा अच्छी तरह निकल नहीं रही, धुँधला-धुँधला दिख रहा है कि बहुत शीर्ण है । परन्तु अत्यन्त रूपवती मर्मपीडिता कोई स्त्रीमूर्ति रो रही है, मुझे जैसे सुगन्ध मन्द पवन की तरङ्गों पर बहाते हुए उस चतुर्भुज के सिंहासन के नीचे ला डाला । जैसे वही मेघमण्डिता शीर्णा स्त्री ने मुझे दिखाकर कहा, “यही है वह—इसी के कारण महेन्द्र मेरी गोद में नहीं आ रहा ।” तब एक बड़ी साफ मधुर वंशी की ध्वनि-सी हुई । उसी चतुर्भुज ने जैसे मुझसे कहा, ‘तुम पति को छोड़कर मेरे पास आओ । ये तुम लोगों की मा हैं, तुम्हारे पति इनकी सेवा करेंगे । तुम पति के पास रहोगी, तो इनकी सेवा नहीं होगी । तुम बली आओ ।’ मैंने क्या कहा, याद नहीं । मेरी नोंद टूट गई । यह कह कर कल्याणी चुप हो गई ।

महेन्द्र विस्मित, स्तम्भित, भीत होकर चुप हो गये । सर पर पिड़की बोलने लगी । पपीहा स्वर से आकाश प्लावित करने लगा । कोयल दिङ्मण्डल प्रतिध्वनित करने लगी । भृङ्गराज कल कण्ठ से कानन कम्पित करने लगा । पैरों के तले तटिनी मृदु कल्लोल कर रही थी । हवा जङ्गली फूलों की भीनी महक ला दे रही थी । कहीं नदी के पानी पर बीच बीच धूप भलमला

रही थी। कहीं ताड़ के पत्ते धीमी हवा में मर्मर-शब्द कर रहे थे। दूर नीले पर्वतों की श्रेणी दिख रही थी। दोनों बहुत देर तक मुग्ध होकर चुपचाप रहे। बहुत देर बाद कल्याणी ने फिर पूछा, “क्या सोच रहे हो?”

महेन्द्र—क्या करूँगा, यही सोचता हूँ। स्वप्न केवल बिभीषिका है, अपने मन से पैदा होकर आप लय पाता है, जीवन का जलबिम्ब; चलो, घर चलें।

कल्याणी—जहाँ देवता तुम्हें जाने के लिए कहते हैं, वहाँ जाओ।

यह कहकर कल्याणी ने कन्या को पति की गोद में दिया।

कन्या को गोद में लेकर महेन्द्र ने पूछा, “और, तुम—तुम कहाँ जाओगी?”

कल्याणी ने दोनों हाथ से आँखें ढककर सर दबाकर कहा, “मुझे भी देवता ने जहाँ जाने के लिए कहा है, मैं भी वहीं जाऊँगी।”

महेन्द्र चौंक उठे; पूछा, “वह कहाँ, किस तरह जाओगी?”

कल्याणी ने विषवाली डिबिया दिखाई।

महेन्द्र ने विस्मित होकर कहा, “यह क्या? विष खाओगी?”

क०—सोचा था, खाऊँगी, परन्तु—

कल्याणी नीरव होकर सोचने लगीं। महेन्द्र उनका मुँह देखते रहे। प्रति-पलक साल मालूम देने लगा। कल्याणी ने फिर बात पूरी नहीं की, देखकर महेन्द्र ने पूछा, “परन्तु” कहकर क्या कहना चाहती थीं?

क०—खाऊँगी सोचा था, परन्तु तुम्हें छोड़कर, सुकुमारो को छोड़कर वैकुण्ठ जाने की भी मेरी इच्छा नहीं होती। मैं नहीं मरूँगी।

यह कह कर कल्याणी ने ज़हरवाली डिबिया ज़मीन पर रख दी। फिर दोनों भूत और भविष्यत की बातचीत करने लगे। बातचीत करते दोनों अन्यमनस्क हुए। इसी अवकाश में लक्ष्मी ने खेलते खेलते ज़हरवाली डिबिया उठा ली। यह किसी ने नहीं देखा।

सुकुमारी ने सोचा, यह बहुत अच्छी खेलने की चीज़ है। डिबिया एक बार बाँयें हाथ में लेकर दाँयें हाथ से खूब थपथपाया। फिर दाँयें में लेकर बाँयें से थपथपाया। इसके बाद दोनों हाथों पकड़कर खींचने लगी। डिबिया खुल गई। ज़हरवाली गोली गिर गई।

बाप की धोती पर वह छोटी गोली गिरी। सुकुमारी ने देखा, सोचा, यह एक और खेलने की चीज़ है। डिबिया फेंककर हथेली मारकर गोली उठा ली।

डिबिया सुकुमारी ने मुँह में नहीं रखी, मगर गोली के लिए ज़रा भी देर नहीं की। ‘प्राप्तिमात्रेण भोक्तव्यम्’—सुकुमारी ने गोली मुँह में रख ली।

“क्या खाया—क्या खाया—ग़ज़ब हो गया।”

यह कहते हुए कल्याणी ने कन्या के मुँह में अँगुली डाल दी। तब दोनों ने देखा कि ज़हरवाली डिबिया खाली पड़ी है। सुकुमारी, एक खिलौना पाया है सोचकर, दाँत चापकर, तब तक इने गिने दाँत निकले थे—मा के मुँह की तरफ़ देखकर हँसने लगी। अब तक शायद ज़हर की बड़ी का मुँह में बुरा स्वाद मालूम दिया था, क्योंकि कुछ देर बाद लड़की ने आप पाटियों को ढीला कर दिया था, कल्याणी ने बड़ी निकालकर फेंक दी। लड़की रोने लगी।

बड़ी मिट्टी पर पड़ी रही। कल्याणी ने नदी से आँचल भिगोकर लड़की के मुँह में पानी डाला। बड़ी कातरता से महेन्द्र से पूछा, “क्या कुछ पेट में गया होगा?”

अमङ्गल की शङ्का ही पहले मा-बाप के मन में उठती है—जहाँ अधिक स्नेह है, वहाँ भय ही अधिक प्रबल है। महेन्द्र ने कभी देखा नहीं, वह बड़ा पहले कितनी बड़ी थी। अब बड़ी हाथ में लेकर बहुत देर तक निरीक्षण करते हुए कहा—“जान पड़ता है, बहुत-सा हिस्सा खा गई है।”

फलतः कल्याणी को भी वैसा ही विश्वास हुआ। काफ़ी देर तक वे भी

बड़ी हाथ में लेकर निरीक्षण करती रहीं। इधर लड़की ने जो दो-एक घूँट निगले थे, उसके कारण कुछ विकृतावस्था होने लगी। कुछ तलफने लगी—रोने लगी, अन्त में कुछ अवसन्न हो गई। तब कल्याणी ने पति से कहा—“अब क्या देखते हो ? जिस रास्ते देवताओं ने बुलाया है, उसी रास्ते खुकुमारी चली—मुझे भी जाना होगा।”

यह कहकर कल्याणी ज़हर की बड़ी मुँह में डालकर ज़ाण भर में निगल गई।

महेन्द्र ने रोते हुए कहा—“क्या किया, कल्याणी, यह क्या किया ?”

कल्याणी ने कोई जवाब न देकर पति के पेरों की धूल सिर पर रखी, कहा—“स्वामिन्, बात करने पर बात बढ़ेगी, मैं चली।”

“कल्याणी, क्या किया तुमने ?” कहकर महेन्द्र चोख मारकर रोने लगे। बहुत ही मन्द स्वर से कल्याणी कहने लगी—“मैंने अच्छा ही किया है। तुच्छ स्त्री के लिए कहीं तुम देवता के काम में जी न लगाओ। देखो, मैं देवता की बात टाल रही थी, इसी लिए मेरी लड़की गई। और अवहेला करने पर कहीं तुम भी जाओ।”

महेन्द्र रोक बोलें—“तुम्हें कहीं रख आता। हमारा काम सिद्ध होने पर फिर तुम्हें लेकर खुशी होता। कल्याणी मेरी सब कुछ है। क्यों तुमने ऐसा काम किया ? जिस हाथ की ताकत से मैं तलवार पकड़ता था, वह हाथ ही काट डाला ! तुम्हारे बिना मैं क्या हूँ ?”

कल्याणी—कहाँ मुझे ले जाते ?—जगह कहाँ है ? मा, बाप, बन्धु लाग इस घोर दुःसमय में सभी ता मर गये हैं। किपके घर में जगह है ? कहाँ जाने का रास्ता है ? कहाँ ले जाओगे ? मैं गले लगी बला हूँ। मैं मरी, मैंने अच्छा ही किया। मुझे आशोर्वाद दो, जिससे उसी—उसी आलोकमय लोक में जाकर फिर तुम्हारे दर्शन पाऊँ।”

यह कहकर कल्याणी ने फिर पति के पैरों की धूल लेकर सिर पर रखी । महेन्द्र कोई उत्तर नहीं दे पाये, फिर रोने लगे ।

कल्याणी ने फिर कहा—अति मृदु, अति मधुर, अति स्नेहमय कण्ठ से,— फिर कहा—“देखो, देवता की इच्छा है, किसकी मजाल जो टाल सके ? मुझे जाने की आज्ञा दी है, मैं मन में करके क्या रह सकती हूँ ? खुद न मरती तो अवश्य कोई दूसरा मारता । मरकर मैंने अच्छा ही किया है । तुमने जो व्रत ग्रहण किया है, तन, मन और वाणी से उसे सिद्ध करो, पुण्य होगा । मुझे उससे स्वर्ग-प्राप्ति होगी । दोनों आदमी एक साथ अनन्त स्वर्ग भाग करेंगे ।”

इधर लड़की एक दफा दूध डालकर सँभली । उसके पेट में थोड़ा ही ज़हर गया था, जान का खतरा नहीं था । लेकिन उस समय उधर महेन्द्र का मन नहीं था । कन्या को कल्याणी की गोद में डालकर दोनों को गाढ़ आलिङ्गन करके वे अविरत रोने लगे । तब जैसे अरण्य के भीतर से मधुर और मेघ का जैसा गम्भीर शब्द सुन पड़ा;—

“हरे मुरारे मधुकैटभारे !

गोपाल गोविन्द मुकुन्द शौरे !”

कल्याणी पर उस समय ज़हर चढ़ रहा था । कुछ-कुछ बेहोशी आ रही थी । उन्होंने उस मोह में सुना, जैसे वैकुण्ठ में सुना, उसी अपूर्व वंशीध्वनि में बज रहा है—

“हरे मुरारे मधुकैटभारे !

गोपाल गोविन्द मुकुन्द शौरे !”

तब कल्याणी मोह के भीतर से अप्सरानिन्दित कण्ठ से पुकारने लगी—

“हरे मुरारे मधुकैटभारे !”

महेन्द्र से कहा, “कहो—

हरे मुरारे मधुकैटभारे !”

कानन से निकले मधुर स्वर और कल्याणी के मधुर स्वर से सुग्ध हो कर कातर चित्त से ईश्वर को ही सहायक सोचकर महेन्द्र ने पुकारा—

“हरे मुरारे मधुकैटभारे !”

तब चारों तरफ से ध्वनित होने लगा,—

“हरे मुरारे मधुकैटभारे !”

तब जैसे पेड़ों की चिड़ियाँ भी कहने लगीं,—

“हरे मुरारे मधुकैटभारे !”

नदी की कल-कल में भी जैसे शब्द उठने लगा,—

“हरे मुरारे मधुकैटभारे !”

तब महेन्द्र शाकताप भूल गये—पागल होकर कल्याणी के साथ एक स्वर से पुकारने लगे,—

“हरे मुरारे मधुकैटभारे !”

कानन से भी जैसे उनके साथ गला मिलाकर शब्द होने लगा—

“हरे मुरारे मधुकैटभारे !”

कल्याणी का गला क्रमशः क्षीण हो आने लगा, फिर भी पुकार रही हैं—

“हरे मुरारे मधुकैटभारे !”

फिर क्रम-क्रम से कण्ठ रुक गया; कल्याणी के मुख में अब शब्द नहीं, आँखें निमीलित हुईं, अङ्ग शीतल हो गये। महेन्द्र समझे, कल्याणी ‘हरे मुरारे’ पुकारती हुई वैकुण्ठवाम चली गई हैं। तब पागल की तरह ऊँचे स्वर से कानन के कम्पित करते हुए, पशु-पक्षियों को चौंकाकर महेन्द्र पुकारने लगे—

“हरे मुरारे मधुकैटभारे !”

उसी समय कोई आकर उन्हें गाढ़ आलिङ्गन करके उनके साथ वैसे ही ऊँचे स्वर से पुकारने लगा—

“हरे मुरारे मधुकैटभारे !”

तब उस अनन्त की महिमा में उस अनन्त अरण्य में अनन्तपथगामिनी की देह के सामने दोनों जन अनन्त का नाम-कीर्तन करने लगे । पशु-पक्षी नीरव हैं, पृथिवी अपूर्वशोभामयी हो रही है—इस चरम गीत का उपयुक्त मन्दिर । सत्यानन्द महन्द्र को गोद में लेकर बैठे ।

तेरहवां परिच्छेद

इधर राजधानी में, राजमार्ग में, बड़ा गुलगपाड़ा मचा। आवाज़ उठी कि जितने सरकारी खज़ाने का कलकत्ता चालान जा रहा था, सब संन्यासियों ने लूट लिया। तब राजा के हुक्म से संन्यासियों का पकड़ने के लिए सिपाही-बरकन्दाज़ दौड़ने लगे। इस समय इस अकाल-पीड़ित देश में यथाथे संन्यासी बहुत नहीं थे। क्योंकि, वे भिक्षा से जीते हैं; आदमी खुद खाने का नहीं पा रहे, संन्यासी का भीख कौन देगा? इसलिए सहो मानी में जो संन्यासी थे, सब पेट की ज्वाला से काशी-प्रयागादि की तरफ़ भग गये थे। सिर्फ़ सन्तान लोग स्वेच्छा से संन्यासी-वेश धारण करते थे। ज़रूरत पड़ने पर छोड़ भी देते थे। आज गुलगपाड़ा देखकर बहुतों ने संन्यासी-वेश परित्याग किया। भूखे सिपाही कहीं संन्यासी न पाकर केवल गृहस्थों की हण्डियाँ तोड़कर, आधा पेट भरकर, ठण्डे पड़े। सिर्फ़ सत्यानन्द किसी वक्त गेरुआ वस्त्र नहीं छोड़ते थे।

उस काली कल्लोलिनी छोटी नदी के तट पर, उस पथ के किनारे ही, पेड़ के नीचे कल्याणी पड़ी हुई हैं। महेन्द्र और सत्यानन्द एक दूसरे का आलिङ्गन करके अश्रुसिक्त नयनों से ईश्वर का पुकार रहे हैं। जमादार सिपाहियों को लेकर ऐसे समय वहाँ हाज़िर हुआ। एकाएक सत्यानन्द के गले में हाथ रखकर कहा, “यह साला संन्यासी है।”

एक दूसरे ने उसी वक्त महेन्द्र को पकड़ लिया, क्योंकि, जो संन्यासी का साथी है, वह अवश्य ही संन्यासी होगा। एक तीसरा घास पर लेटी हुई कल्याणी का शव पकड़ने जा रहा था, देखा, एक स्त्री की मृत देह है, संन्यासी नहीं भी हो सकता। फिर नहीं पकड़ा। बालिका को भी उसी विवेचन से

छेड़ दिया। फिर कोई बातचीत न करके दोनों आदमियों के वे बाँधकर ले चले। कल्याणी की मृत देह और उसकी बालिका कन्या बिना रखवाले के उसी पेड़ के नीचे पड़ी रहीं।

पहले शोक से अभिभूत और ईश्वर-प्रेम से उन्मत्त होकर महेन्द्र प्रायः अचेत थे। क्या हो रहा था, क्या हुआ, समझ नहीं सके। बाँधे जाते वक्त हाथ-पैर नहीं हिलाये। परन्तु दो-चार कदम जाने पर समझे, हमें बाँधे ले जा रहे हैं। कल्याणी का शव पड़ा रहा; इस समय उन्हें हिंस्र जन्तु खा जा सकते हैं, यह बात मन में आते ही महेन्द्र ने दोनों हाथ एक दूसरे से अलग करने को जोर लगाया, एक झटके से बन्धन टूट गया। उसी वक्त एक लात जमादार को ऐसी मारी कि जमादार साहब लोट गये, फिर एक सिपाही पर दूटे ही थे कि तीन तरफ़ से तीन सिपाहियों ने हमला किया और उन्हें काबू में कर लिया। तब दुःख से व्याकुल होकर महेन्द्र ने सत्यानन्द ब्रह्मचारी से कहा, “आप कुछ भी मदद करते तो मैं इन पाँचों दुरात्माओं की जान ले लेता।” सत्यानन्द ने कहा, “मेरे इस प्राचीन शरीर में बल क्या है—मैं जिन्हें पुकार रहा था, उनके सिवा मेरा और बल नहीं। जो अवश्य होनेवाला है, उसका विरोध न करना। हम इन पाँच आदमियों को परास्त नहीं कर सकेंगे। चलो, कहाँ लिये जाते हैं देखें। जगदीश्वर सब तरफ़ रक्षा करेंगे।”

फिर वे दोनों आदमी छूटने की कोई कोशिश न करके सिपाहियों के पीछे पीछे चले। कुछ दूर जाकर सत्यानन्द ने सिपाहियों से पूछा, “बेटा, मैं हरिनाम किया करता हूँ—हरिनाम जपने में कोई बाधा है?” सत्यानन्द को जमादार ने भला आदमी, समझा था। उसने कहा, “तुम हरिनाम करो, तुम्हें मना नहीं करेंगे। तुम बूढ़े ब्रह्मचारी हो; जान पड़ता है, तुम्हारे छुटकारे का ही हुक्म होगा, इस बदमाश को फाँसी होगी।” तब ब्रह्मचारी मृदु स्वर से गाने लगे—

“धीरसमीरे तटनीतीरे वसति वने वर नारी ।

न कुरु धनुर्धर गमनविलम्बनमतिविधुरा सुकुमारो ॥” आदि शहर में पहुँचने पर वे लोग कोतवाल के हवाले किये गये । कोतवाल ने सरकार को इत्तिला करके ब्रह्मचारी और महेन्द्र को हवालात में रख दिया । वह बड़ा ही भयङ्कर कारागार था । जो जाता था, वह प्रायः निकलता नहीं था । क्योंकि विचार करनेवाला आदमी नहीं था । अँगरेज़ों की जेल नहीं, क्योंकि तब अँगरेज़ों का विचार नहीं था । आज नियम के दिन हैं, तब अनियम के दिन थे । नियम के दिन और अनियम के दिन की तुलना करो ।

— —

चौदहवाँ परिच्छेद

रात आ गई। कारागार में बन्द सत्यानन्द ने महेन्द्र से कहा, “आज बड़े आनन्द का दिन है, क्योंकि हम लोग कारागार में अवरुद्ध हैं। कहो, हरे मुरारे !”

महेन्द्र ने कातर स्वर से कहा, “हरे मुरारे !”

सत्या०—कातर क्यों हो बेटा जी ? यह व्रत लेने पर तुम्हें स्त्री-कन्या तो छोड़नी ही पड़ती; फिर तो कोई सम्बन्ध न रहता।

महे०—त्याग एक बात है, यमदण्ड और। और जिस शक्ति से मैं यह व्रत ग्रहण करता, वह शक्ति मेरी स्त्री-कन्या के साथ गई है।

सत्या०—शक्ति होगी। मैं शक्ति दूँगा। महामन्त्र में दीक्षित होओ, महाव्रत ग्रहण करो।

महेन्द्र ने नाराज़गी से कहा, “मेरी स्त्री-कन्या को संयार-कुत्ते खा रहे हैं—मुझसे किसी व्रत की बात न कीजिएगा।”

सत्या०—इस विषय में निश्चिन्त रहो। सन्तानों ने तुम्हारी स्त्री का संस्कार कर दिया है—कन्या को लेकर उपयुक्त जगह रक्खा है।

महेन्द्र विस्मित हुए, बहुत विश्वास नहीं किया; पूछा, आपको किस तरह मालूम हुआ ? आप तो बराबर मेरे साथ हैं।”

सत्या०—हम लोग महाव्रत में दीक्षित हैं। देवता हम पर दया करते हैं आज रात में ही तुम यह संवाद पाओगे। आज रात में ही तुम कारागार से मुक्त होगे।

महेन्द्र ने कोई बात नहीं की। सत्यानन्द समझे कि महेन्द्र विश्वास नहीं कर रहे। तब सत्यानन्द ने कहा, “विश्वास नहीं कर रहे, परीक्षा करके देखो।”

यह कहकर सत्यानन्द कारागार के द्वार तक आये। क्या किया, आँधरे में महेन्द्र कुछ देख नहीं पाये। परन्तु इतना समझे कि किसी से उन्होंने बातचीत की। लौट आने पर पूछा, “कैसी परीक्षा ?”

सत्या०—तुम इसी क्षण कारागृह से मुक्ति पाओगे।

उनके यह कहते-कहते कारागार का दरवाज़ा खुला। एक आदमी ने कमरे के भीतर आकर पूछा “महेन्द्रसिंह किसका नाम है ?”

महेन्द्र ने कहा, “मेरा नाम है।”

आगन्तुक ने कहा, “तुम्हारे छुटकारे का हुक्म हुआ है, जा सकते हो।”

महेन्द्र पहले ताज्जुब में आये, फिर मन में कहा, भूठ बात है। परीक्षा के लिए निकले। किसी ने उनका रास्ता नहीं रोका। महेन्द्र राजपथ तक चले गये।

इसी अवसर में आगन्तुक ने सत्यानन्द से कहा, “महाराज, आप भी क्यों नहीं जाते ? मैं आपके लिए आया हूँ।”

सत्या०—तुम कौन हो ? धीरानन्द गोसाईं ?

धीरा०—जी हाँ।

सत्या०—पहरेदार किस तरह हुए ?

धीरा०—भवानन्द ने मुझे भेजा है। शहर में आकर, आप लोग इस कारागार में हैं सुनकर, यहाँ कुछ धतूरा-मिली भङ्ग ले आया था। जो खाँ साहब पहरे में थे, वे उसका सेवन कर भूमिशय्या पर लेटे हुए हैं; यह वर्दी, पगड़ी, बर्छा, जो कुछ मैं पहने और लिये हुए हूँ, उन्हीं का है।

सत्या०—तुम यह सब पहने हुए शहर से बाहर निकल जाओ। मैं इस तरह नहीं जाऊँगा।

धीरा०—क्यों ? ऐसा क्यों ?

सत्या०—आज सन्तानों की परीक्षा है।

महेन्द्र लौट आये। सत्यानन्द ने पूछा, “तुम लौटे क्यों ?”

महेन्द्र—आप अवश्य सिद्ध पुरुष हैं, अस्तु मैं आपका साथ छोड़कर नहीं जाऊँगा ।

सत्या०—तो रहो । हम दोनों आज रात को दूसरी तरह मुक्त होंगे ।

धीरानन्द बाहर गये । सत्यानन्द और महेन्द्र कारागार में रहे ।

— — —

पन्द्रहवाँ परिच्छेद

ब्रह्मचारी का गाना बहुतों ने सुना था। दूसरे दूसरे आदमियों में जीवानन्द के कानों में वह गाना पड़ा। महेन्द्र का पीछा पकड़ने की उन्हें आज्ञा थी, यह पाठकों को याद होगा। रास्ते में एक स्त्री से मुलाकात हुई थी। उसने सात दिन नहीं खाया था। रास्ते के किनारे पड़ी थी। उसे जान देने के विचार से जीवानन्द ने दो दण्ड देर की थी। स्त्री को बचाकर उसे बड़ी कुत्सित भाषा में गालियाँ देते हुए (देर का अपराध उसका है) अब आ रहे थे। देखा, प्रभु को मुसलमान पकड़े लिये जा रहे हैं—प्रभु गीत गाते हुए जा रहे हैं।

जीवानन्द महाप्रभु सत्यानन्द के कुल सङ्केत समझते थे।

“धीरसमीरे तटिनीतीरे वसति वने वरनारी।”

नदी के किनारे क्या और कोई औरत बिना भोजन किये पड़ी है? सोच-विचार कर जीवानन्द नदी के किनारे-किनारे चले। जीवानन्द ने देखा था, ब्रह्मचारी स्वयम्भू, मुसलमानों से, ले जाये जा रहे हैं। ऐसी जगह ब्रह्मचारी का उद्धार ही उनका पहला काम है। परन्तु जीवानन्द ने सोचा, “इस संकेत का वह अर्थ नहीं। उनकी—जान बचाने से उनका हुक्म मानना बड़ा है—यही उनके पास पहले सीखा है; अतएव उनकी आज्ञा ही पूरी करूँगा।”

नदी के किनारे-किनारे जीवानन्द चले। चलते-चलते उसी वृक्ष के नीचे नदी के किनारे देखा, एक स्त्री की मृत देह पड़ी है और एक जीती हुई छोटी लड़की है। पाठकों को याद होगा, महेन्द्र की स्त्री-कन्या को जीवानन्द ने एक बार भी नहीं देखा। सोचा, ‘सम्भव है कि यही महेन्द्र की स्त्री-कन्या हों। क्योंकि, प्रभु के साथ महेन्द्र को देखा है। खैर, मा मर गई है, लड़की जीती’

है। पहले इसकी रत्ना का विधान करना चाहिए, नहीं तो बाघ-भालू खा जायेंगे। भवानन्द महाराज यहीं कहीं हैं, वे स्त्री की अन्तिम क्रिया कर देंगे।' यह सोचकर जीवानन्द बालिका को गोद में लेकर चले।

लड़की को गोद में लेकर जीवानन्द गोसाईं उस घने जङ्गल में पड़े। जङ्गल पारकर एक छोटे गाँव में गये। गाँव का नाम भैरवीपुर है। लोग कहते हैं, भरईपुर। भरईपुर में कुछ साधारण आदिमियों के भोपड़े हैं, पास दूसरा बड़ा गाँव नहीं; गाँव पार करने पर फिर जङ्गल है। चारों ओर जङ्गल—जङ्गल के बीच एक छोटा-सा गाँव। परन्तु गाँव बड़ा सुन्दर है। केमल तृणों से ढकी गोचर-भूमि; केमल श्यामल पल्लवोंवाले आम, कटहल, जामुन और ताड़ के बगीचे; बीच बीच नीले जल से भरे सरोवर। उनके जल पर बगले, हंस, डाहुक; किनारे कायल, चकवे; कुछ दूर पर मोर ऊँची आवाज़ से बोल रहे हैं। घर-घर, सहन में गायें, घर के भीतर धान रखने की 'मड़ई', परन्तु आजकल अकाल में धान नहीं। किसी के छप्पर में मयना का पिंजरा टंगा है, किसी की दीवार पर तसवीरें खिंची हैं, किसी के आंगन में साग बोया हुआ है। सभी अकाल से पीड़ित हैं, दुबले-पतले, सन्ताप करते हुए। फिर भी इस गाँव के आदिमियों में कुछ श्री का ढाँचा है। जङ्गल में बहुत तरह का मनुष्यों का खाद्य पैदा होता है, इसलिए जङ्गल से खाद्य एकत्र कर उस गाँव के रहनेवाले प्राण और स्वास्थ्य की रक्षा कर सके थे।

आम के एक बड़े कानन में एक छोटा-सा मकान है, चारों तरफ मिट्टी की चारदीवार, चारों तरफ चार कमरे। गृहस्थ के गायें हैं, बकरियाँ हैं, एक मोर है, एक मयना है, एक तोता है। एक बन्दर था, लेकिन उसे खाने का नहीं दे सकते, इसलिए छोड़ दिया है। एक ढंकी है, बाहर धान की पैरियाँ लगी हैं, सहन में निम्बू के पेड़ हैं, कुछ मल्लिका-जुही के पौधे, परन्तु इस दफा उन्होंने कलियाँ नहीं लीं। सब कमरों के बरामदों में एक-एक चरखा

है; परन्तु मकान में काफी आदमी नहीं। जीवानन्द लड़की गोद में लेकर उसी मकान में गये।

मकान के भीतर जाकर, एक कमरे के बरामदे पर चढ़कर, जीवानन्द ने चरखा लेकर घनघनाना शुरू किया। उस छोटी लड़की ने कभी चरखे की आवाज़ नहीं सुनी। विशेषतः मा से छूटने के वक्त से रो रही है, चरखे की आवाज़ सुनकर और भी ऊँचे ससम पर चढ़कर रोने लगी। तब कमरे के भीतर से एक सत्रह-अठारह साल की लड़की बाहर निकली। कहा, “यह क्या है? दादा, चरखा क्यों चला रहे हो? यह लड़की कहाँ पाई? दादा, तुम्हारे लड़की हुई है क्या? क्या फिर शादी की?”

जीवानन्द ने लड़की को उस युवती की गोद में देकर उसे मारने के लिए मुट्ठी ब्राँधी, कहा, “नकचिटो! मेरी फिर शादी? मुझे क्या ऐरागैरा समझ लिया है? घर में दूध है?”

उस युवती ने कहा, “दूध है क्यों नहीं! पिओगे?”

जीवानन्द ने कहा, “हाँ, पिऊँगा।”

तब जल्दी-जल्दी दूध औटाने के लिए वह युवती गई। जीवानन्द तब तक चरखा घनघनाने लगे। लड़की उस युवती की गोद में जाकर फिर नहीं रोई। लड़की ने क्या सोचा, हम नहीं कह सकते, शायद इस युवती को फुल्ल-कुसुम-तुल्य सुन्दरी देखकर मा सोचा था। शायद चूल्हे की आँच कुछ लड़की को लगी, इसलिए एक दफ़ा रोई। रोना सुनते ही जीवानन्द ने कहा, “ओ नीमी! ओ मुँहभाँसी। ओ बदरिया! अभी तेरा दूध नहीं औटा गया?” नीमी ने कहा, “औट गया है।” यह कहकर वह बड़ी कूँड़ी में दूध ढालकर जीवानन्द के पास ले आई। जीवानन्द ने बनावटी काम दिखलाते हुए कहा, जी में आता है कि जलती कूँड़ी का दूध तेरे ऊपर ढाल दूँ—तूने क्या सोचा है कि मैं पिऊँगा?”

नीमी ने पूछा, “फिर कौन पियेगा?”

जीवा०—वह लड़की पियेगी, देखती नहीं ? उस लड़की का दूध पिला ।

नीमी तब पीढ़े पर बैठकर, लड़की का गोद में लेटाकर, सूती से दूध पिलाने लगे । एकाएक उसकी आँखों से कुछ बूँद आँसू 2पक गये । उसके एक लड़का होकर मर गया है, उसी की वह सूती थी ।

नीमी ने फिर हथेली से आँसू पोंछकर हँसते हुए, जीवानन्द से पूछा, “क्यों दादा, यह किसकी लड़की है ?”

जीवानन्द ने कहा, “तुझे इससे क्या री, ”

नीमी ने कहा, “मुझे यह लड़की दोगे ?”

जीवानन्द ने कहा, “तू लेकर क्या करेगी ?”

नीमी—मैं लड़की का दूध पिलाऊँगी, गोद में लूँगी, बड़ी करूँगी ।

कहते-कहते मुए आँखों के आँसू फिर बह चले । नीमी ने फिर हथेलियों से पोंछा, फिर हँसी ।

जीवानन्द ने कहा, “तू लेकर क्या करेगी ? तेरे ही कितने लड़की-लड़के होंगे ।”

नीमी—होंगे तो होंगे । अभी तो इस लड़की का दो । इसके बाद, न हो, ले जाइएगा ।

जीवा०—तो ले । लेकर मर । मैं बीच-बीच में आकर देख जाऊँगा । वह कायस्थ की लड़की है । मैं चला इस समय ।

नीमी—यह कैसे ? भोजन नहीं करागे ? कितना दिन चढ़ आया है । दो कौर खाते जाओ, मेरी कसम है ।

लड़की का गोद में लिये हुए नीमी जल्द-जल्द भोजन परोसने लगी ।

जगह छींटकर, पीढ़ा डालकर, मल्लिका के फूल जैसे साफ चावल, कच्ची फली की दाल, जङ्गली गूलड़ की तरकारी, तालाब की रोहू मछली का रसेदार और दूध लाकर जीवानन्द का जिवाने लगी । भोजन

के लिए बैठते हुए जीवानन्द ने कहा, “नीमी दोदी ! कौन कहता है कि मन्वन्तर है ? तुम्हारे गाँव में शायद मन्वन्तर नहीं आया ।”

नीमी ने कहा, “मन्वन्तर क्यों नहीं होगा, बहुत बड़ा मन्वन्तर है । लेकिन हम दो आदमी हैं, घर में जो कुछ है, आदमियों को देते हैं खुद खाते हैं । हमारे गाँव में पानी बरसा था, याद नहीं ? तुम वह जो कह गये थे, वन में वर्षा होती है । इस तरह, हमारे गाँव में कुछ-कुछ धान हुआ था । सब आदमी शहर में बेच आये । हम लोगों ने नहीं बेचा ।”

जीवानन्द ने पूछा, “बहनोई जी कहाँ हैं ?”

नीमी ने सर झुकाकर धीमी आवाज़ में कहा, “दो-तीन सेर चावल लेकर कहीं निकले हैं । किमी ने चावल माँगा था, सुना ।”

इधर जीवानन्द को ऐसा भाजन बहुत दिनों स नहीं नसीब हुआ । जीवानन्द ने और व्यर्थ की बातों में समय नष्ट न करके, समासप, गपागप कटाकट आदि नाना प्रकार के शब्दों से बहुत थोड़े समय में अन्न और व्यञ्जन आदि समास किया । श्रीमती निमाइ मणि ने सिर्फ अपने और पति के लिए खाना पकाया था, अपना भोजन दादा को दिया था; थाली खाली देखकर अप्रतिभ होकर पति का भोजन भी लाकर परोस दिया । जीवानन्द की भौंहों में बल नहीं पड़े, उन्होंने वह सब भी उदर नाम के बृहत् गह्वर में डाल दिया । तब निमाइ मणि ने पूछा, “दादा, और कुछ चाहिए ?”

जीवानन्द ने पूछा, “और क्या है ?”

निमाइ मणि ने कहा, “एक पका कटहल है ।”

निमाइ ने वह पका कटहल ला दिया । कोई एतराज़ किये बिना, जीवानन्द गोस्वामी ने उस कटहल को भी उसी ध्वंसपुर में प्रयाण करा दिया । तब निमाइ ने हँसकर कहा, “दादा, अब कुछ नहीं है ।”

दादा ने कहा, “तो जा, एक दूसरे दिन आकर खाऊँगा ।”

लाचार, निमाइ ने जीवानन्द को मुँह धोने का जल दिया। जल देते देते निमाइ ने कहा, “दादा, मेरी एक बात रखोगे ?”

जीवा०—कौन-सी बात ?

निमाइ—मेरे सर की कसम।

जीवा०—कुछ कह भी, मुई !

निमा०—बात रखोगे ?

जीवा०—बात क्या है, पहले कह तो।

निमा०—मेरे सर को कसम, तुम्हारे पैरों पड़ूँ।

जीवा०—तेरे सर का कसम हँ, तू पैरों भी पड़, लेकिन बात क्या है, कह तो।

निमाइ ने एक हाथ से दूसरे हाथ की उँगली दबाकर, सर झुकाकर उन उँगलियों को देखते हुए एक दफा जीवानन्द के मुँह की तरफ देखकर, एक दफा ज़मीन पर निगाह डालते हुए, अन्त में ज़बान खोलकर पूछा, “एक दफा बहू को बुला दूँ ?”

जीवानन्द हाथ धोने वाला गे.डुवा उठाकर नीमी के सर पर पटकने को उद्यत हो गये; कहा, “मेरी लड़की लौटाल दे, और मैं किसी दिन तेरा चावल-दाल लौटा दे जाऊँगा। तू बँदरिया है मुँहभौंसी, जो कुछ नहीं कहने का, मुझे कहती है।”

निमाइ ने कहा, “हो कि मैं बँदरिया हूँ, मुँहभौंसी हूँ, एक दफा बहू को बुला दूँ ?”

जीवा०—मैं चला।”

यह कहकर जीवानन्द लम्बे डग भरते हुए बाहर निकलने को हुए कि निमाइ दरवाज़े पर खड़ी हो गई; दरवाज़ा बन्द करके दरवाज़े से पोछ लगाकर बोली, “पहले मुझे मार डालो तब तुम जाओ। बहू से मुलाक़ात किये बिना तुम जा नहीं सकते।”

जीवानन्द ने कहा, “मैंने कितने आदमियों को मार डाला है, यह तू जानती है ?”

अब नीमी को गुस्सा आया, कहा, “बड़ो कीर्ति कर डाली। खो छोड़ोगे, आदमी मारोगे, और मैं तुमसे डरूँगी। तुम जिस बाप के सन्तान हो, मैं भी उसी बाप की संतान हूँ; आदमी मारना अगर शेखी की बात है, तो तुम्हें मारकर शेखी करो।”

जीवानन्द हँस, कहा, “बुला ला, किस पापिष्ठा को बुला लायेगी, ले आ; परन्तु देख, फिर अगर ऐसी बात कहेगी, तो तुम्हें कुछ कहूँ या न कहूँ, उस साले के भाई साले का सर मुड़ाकर, सर पर मट्टा डालकर, गधे पर उल्टा चढ़ाकर देश के बाहर निकाल दूँगा।”

नीमी ने मन हो मन कहा, “तो मेरी जान में जान आये।” यह कहकर हँसती हुई बाहर निकल गई। पास के एक पर्णकुटीर के भीतर गई। कुटीर में सैकड़ों गाँठवाली धोती पहने, रूखे बालवाली एक स्त्री बैठी चरखा चला रही थी। निमाइ ने जाकर कहा, “बहू, जल्दी।” बहू ने कहा, “जल्दी क्या री ? नन्दोई जी ने तुम्हें मारा है क्या, ददे पर तेल लगाना है ?”

नीमी—हाँ, क्ररीब-क्ररीब ऐसा ही हूँ। तेल है घर में ?

उस स्त्री ने तेलवाली हण्डी निकाल दी। नीमी ने हण्डी से अँजुली-अँजुली तेल निकाल कर उस स्त्री के सर में चुपड़ दिया। जल्द-जल्द एक काम-चलाऊ खोंपा* बाँध दिया। इसके बाद उसे एक घूँसा मारकर कहा “तेरी वह ढाँकेवाली साड़ी कहाँ है, बता ?” वह स्त्री कुछ विस्मित होकर बोली, “क्यों री, तू पागल हो गई है क्या ?”

निमाइ ने घम्म से एक घूँसा पीठ पर मारा, कहा, “साड़ी निकाल।”

तमाशा देखने के लिए उस स्त्री ने साड़ी निकाली। तमाशा देखने के

* बङ्गाल में बँधे बालों के वृत्त को खोंपा कहते हैं।

लिए—क्योंकि, इतने दुःख में भी तमाशा देखने की उसकी वृत्ति हृदय से लुप्त नहीं हुई। नवीन यौवन, फुल्ल कमल जैसा उसकी नई उम्र का सौंदर्य, तेल नहीं, वेश नहीं, भाजन नहीं, फिर भी वह जलता हुआ अननुमेय सौंदर्य उस सैकड़ों ग्रन्थिवाले वस्त्र के भीतर भी खुल रहा है। रंग में छायालोक का चाञ्चल्य, आँखों में कटाक्ष, होठों में हँसी, हृदय में धैर्य। भोजन नहीं होता, फिर भी देह लावण्यमय है; बनावसिंगार नहीं, फिर भी सौन्दर्य पूरी तरह खुला हुआ। जैसे मेघ में बिजली, जैसे मन में प्रतिभा, जैसे संसार के शब्दों में सङ्गीत, जैसे मृत्यु के भीतर सुख है, वैसे ही उस रूपराशि में अन्निर्वचनीय क्या था। अन्निर्वचनीय माधुर्य, अन्निर्वचनीय ऊँचे भाव, अन्निर्वचनीय प्रेम, अन्निर्वचनीय भक्ति। उसने हंसते हुए (किसी ने वह हँसी नहीं देखी) ढाके-वाली साड़ी बाहर निकाल दी। पूछा, “क्यों री नीमी, क्या होगी?” नीमी ने कहा, “तू पहनेगी।” उसने पूछा, “मेरे पहनने से क्या होगा?” तब निमाइ उसके कमनीय कण्ठ में अपनी कमनीय बाहें लपेटकर बोली, “दादा आये हैं, तुझे चलने के लिए कहा है।” उसने कहा, “चलने के लिए कहा है तो ढाके की साड़ी क्या? चल, ऐसे ही चलें।” निमाइ ने उसके गाल में एक चपत मारी—उसने निमाइ के गले में हाथ रखकर उसे कुटीर के बाहर निकाला; कहा, “चल, यह लत्ता पहनकर उन्हें देख आऊँ।” किसी तरह भी धोती नहीं बदली। लाचार निमाइ राजी हुई। निमाइ उसे साथ लेकर अपने घर के द्वार तक गई, जाकर उसे भीतर करके द्वार बन्द कर आप द्वार पर खड़ी रही।

सोलहवाँ परिच्छेद

उस स्त्री की उम्र लगभग पच्चीस साल की है, लेकिन देखने पर निमाइ से अधिक उम्र की नहीं मालूम होती। मैली गिरह लगी धोती पहने हुए उस घर के भीतर गई। जान पड़ा, घर प्रकाशित हो गया। जान पड़ा, पत्तों में ढकी किसी पेड़ में कितनी कलियाँ थीं, एकाएक खिल गईं। जान पड़ा, कहीं गुलाबपाश का मुँह बन्द था, किसी ने काग तोड़ दिया; किसी ने जैसे गुल होते अङ्गारों पर धूप-धूना-गूगुल डाल दिया। वह रूपसी घर में पैठकर इधर-उधर पति की खोज करने लगी, पहले तो नहीं देख पाई; इसके बाद देखा, घर के आँगन में एक छोटा-सा आम का पेड़ है, आम के तने से सर रक्खे हुए जीवानन्द रो रहे हैं। वह रूपसी धीरे-धीरे उनके पास गई और उनका हाथ पकड़ा। हम यह नहीं कहते कि उसकी आँखों में भी आँसू नहीं आये। ईश्वर ही जानते हैं कि उसकी आँखों से जो धारा बहना चाहती थी, बहने पर वह जीवानन्द को बहा देती, परन्तु उसने वह धारा बहने नहीं दी। हाथ में जीवानन्द का हाथ लेकर बोली, “छिः, भेओ मत; मैं जानती हूँ, तुम मेरे लिए रो रहे हो, मेरे लिए तुम मत रोओ। तुमने जिस तरह से मुझे रक्खा है, मैं उसी तरह से सुखी हूँ।”

जीवानन्द ने सर उठाकर, आँखें पोंछकर स्त्री से पूछा, “शांति ! तुम्हारा यह सौ गिहोंवाला मैला वस्त्र क्यों ? तुम्हें खाने-पहनने की कमी तो नहीं।”

शांति ने कहा, “तुम्हारा धन तुम्हारे ही लिए है। रुपया लेकर क्या करना होता है, मैं नहीं जानती। जब तुम आओगे, तब तुम मुझे ग्रहण करोगे।”

जीवा०—ग्रहण करूँगा, शांति ! मैंने क्या तुम्हें छोड़ दिया है ?

शांति—छाड़ने की बात नहीं—जब तुम्हारा व्रत समाप्त होगा, जब फिर तुम मुझे प्यार करोगे—

बात पूरी न होते ही जीवनानन्द शांति को दबाकर गले लगाकर, उसके कन्धे में अपना सर रखकर, बड़ी देर तक चुपचाप रहे। लम्बी साँस छोड़कर अन्त में कहा, “क्यों मैंने मुलाक्रात की ?”

शांति—क्यों की ? तुमने तो अपना व्रत तोड़ दिया।

जीवा०—व्रत टूटे, प्रायश्चित्त है; मैं इसके लिए चिन्ता नहीं करता; परन्तु तुम्हें देखकर अब तो मैं नहीं लौट पा रहा। मैंने इसी लिए निमाइ से कहा था कि मुलाक्रात की ज़रूरत नहीं, तुम्हें देखने पर मुझसे लौटा नहीं जाता। एक तरफ धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष और जगत्-संसार है; एक तरफ व्रत, होम, याग-यज्ञ है; सब एक तरफ है और एक तरफ हो तुम। मैं सब समय नहीं समझ पाता कि कौन तरफ भारी होती है। देश तो शान्त है, देश लेकर मैं क्या करूँगा ? देश में एक बिस्वा ज़मीन मिलने पर तुम्हें लेकर मैं स्वर्ग रच सकता हूँ, देश से मुझे काम क्या है ? देश के आदमियों का दुःख ? जिसने तुम जैसी स्त्री को पाकर छोड़ा, उससे बढ़कर देश में और कौन दुखी है ? जिसने तुम्हारे अङ्गों पर सैकड़ों गिरहोंवाला वस्त्र देखा, उससे अधिक द्रिड़ इस देश में और कौन है ? मेरे सब धर्मों की सहायिका तुम हो। उस सहायिका को जिसने छोड़ा, उसके पास फिर सनातन-धर्म क्या है ? मैं किस धर्म के लिए कन्धे पर बन्दूक रखकर, देश-देश, वन-वन, जानें ले-लेकर पाप का बोझ बढ़ा रहा हूँ ? पृथ्वी सन्तानों के क़ब्ज़े में आयेगी या नहीं, मैं नहीं जानता, परन्तु तुम पर मेरा अधिकार है, तुम पृथ्वी से बड़ी हो, तुम मेरी स्वर्ग हो। चलो, घर चलें—अब मैं नहीं लौटूँगा।

शान्ति कुछ देर तक बात नहीं कर सकी। इसके बाद कहा, “छिः, तुम वीर हो। पृथ्वी में मेरा बड़ा सुख यह है कि वीर-पत्नी हूँ। तुम अधम स्त्री के लिए वीर-धर्म छोड़ोगे ? तुम अब मुझे प्यार न करना—मैं वह सुख नहीं चाहती—

परन्तु तुम अपना वीर-धर्म कभी न छोड़ना। देखो, मुझसे एक बात कहते जाओ—“इस व्रतभङ्ग का प्रायश्चित्त क्या है?”

जीवानन्द ने कहा, “प्रायश्चित्त है दान, उपवास और बारह काहन कौड़ी।”

शान्ति मुस्कराई। बोली, “प्रायश्चित्त क्या है, यह मैं जानती हूँ। एक अपराध से जो प्रायश्चित्त है, सौ अपराध से भी क्या वही है?”

जीवानन्द तन्त्रजुब में आये, उनका चेहरा उतर गया, पूछा, “ये बातें क्यों करती हो?”

शान्ति—एक भील माँगती हूँ। मुझसे फिर मुलाकात न होने तक प्रायश्चित्त न करना।

तब जीवानन्द हँसे, बोले—“इस वियष में निश्चिन्त रहा। तुम्हें बिना देखे मैं नहीं मरूँगा। मरने की ऐसी जल्दी भी नहीं। मैं अब और यहाँ नहीं रहूँगा। परन्तु आँखें भरकर तुम्हें नहीं देख पाया, एक दिन अवश्य इस तरह देखूँगा, एक दिन अवश्य हमारी अभिलाषा पूरी होगी। मैं अब चला, मेरा एक अनुरोध रखना। यह वेशभूषण छोड़ो। मेरे पुश्तैनी मकान में जाकर रहो।”

शान्ति ने पूछा, “तुम इस समय कहाँ जाओगे?”

जीवा०—अभी मठ में ब्रह्मचारी की खोज में जाऊँगा। वे जिस तरह शहर गये हैं, इससे कुछ चिन्ता हो गई है, मन्दिर में उनका पना नहीं लगा तो शहर जाऊँगा।



सत्रहवाँ परिच्छेद

भवानन्द मठ के भीतर बैठे हुए ईश्वर के गुण गा रहे थे, ऐसे समय उत्तरे चेहरे से ज्ञानानन्द नाम के एक तेजस्वी सन्तान उनके पास आकर हाज़िर हुए। भवानन्द ने पूछा, “गोसाईं जी, चेहरा इतना उतरा क्यों है ?”

ज्ञानानन्द ने कहा, “कुछ फ़साद खड़ा हुआ है। कलवाले मामले के लिए सिपाही गेरुआ वस्त्र देखते हैं और पकड़ते हैं। और और प्रायः सभी सन्तानों ने आज गेरुआ वस्त्र छोड़ दिया है। सिर्फ़ सत्यानन्द महाराज गेरुआ पहने हुए अकेले नगर की ओर गये हैं। क्या मालूम अगर वे मुसलमानों के हाथ पड़ें।”

भवानन्द ने कहा, “उन्हें रोक रखते, ऐसा मुसलमान बज़ाल में नहीं। धीरानन्द उनके पीछे गये हैं, जानता हूँ। फिर भी मैं एक दफ़ा नगर घूम आऊँ, तुम मठ की रक्षा करना।”

यह कहकर भवानन्द एक एकान्त कमरे में गये और एक बड़े सन्दूक से कुछ हथियार निकाले। एकाएक भवानन्द का रूप बदल गया। गेरुआ वस्त्र की जगह चूड़ीदार पाजामा, मिरज़ई, पटुका, अम्मामा और पैरों में नरी के जूते शाभा देने लगे। मस्तक से त्रिपुण्डादि चन्दन-चिह्न सब विलुप्त कर दिये। भौंरे-सी काली मूछ और दाढ़ी से भरा छन्दर मुख अपूर्व शोभा देने लगा। उस वक्त उन्हें देखकर मुग़ल-जाति का युवा जान पड़ने लगा। भवानन्द इस तरह मुग़ल बनकर सशस्त्र हो मठ से बाहर निकले। वहाँ से एक क्रोस दूर दो छोटी-छोटी पहाड़ियाँ थीं। उन पहाड़ियों पर जङ्गल बढ़ता गया है। दोनों पहाड़ियों के बीच में एक एकान्त जगह है, वहाँ कुछ घोड़े

बँधे हुए थे। मठवालों की अश्वशाला यहीं है। भवानन्द उनमें से एक घोड़ा खोलकर उस पर सवार हुए और शहर की ओर बढ़े।

बढ़ते-बढ़ते सहसा उनकी गति रुकी। उसी रास्ते के किनारे, कलकल स्वर से बहती हुई नदी के तट पर, आकाश से गिरी तारिका-सी, मेघमाला से च्युत विद्युत-सी दोस स्त्री-मूर्ति लेटी हुई देखी। देखा, जीवन का कोई भी लक्षण उसमें नहीं—विष की खाली डिबिया पड़ी हुई है।

भवानन्द आश्चर्य में आये, लुब्ध हुए और डरे।

जीवानन्द की तरह भवानन्द ने भी महेन्द्र की स्त्री-कन्या को नहीं देखा। जीवानन्द ने जिन कारणों से सन्देह किया था कि ये महेन्द्र की स्त्री-कन्या हो सकती हैं, भवानन्द के पास वे सब कारण नहीं। उन्होंने ब्रह्मचारी और महेन्द्र को बन्दी होकर ले जाये जाते नहीं देखा। लड़की भी वहाँ नहीं। डिबिया देखकर समझे, यह कोई स्त्री ज़हर खाकर मरी है। भवानन्द उस लाश के पास बैठे, बैठकर गाल से हथेली लगाये हुए देर तक सोचते रहे। सर में, बगल में, हाथ में, दाँयें-बाँयें हाथ लगाकर देखा; बहुत तरह से दूसरों की न जानी हुई परीक्षाएँ कीं; फिर मन-ही-मन कहा, “अब भी समय है, परन्तु बचाकर क्या करूँगा ?” इस तरह भवानन्द ने देर तक विचार किया, विचार करके वन में पैठकर एक पेड़ के कुछ पत्ते ले आये। पत्ते गदोरी में मसल कर रस निकालकर उस लाश के होठों और दाँतों की पाटियों में ऊँगली डालकर, फैलाकर कुछ रस भोतर चला दिया। बाद नाक में कुछ रस डाला और अँगों में वह रस मलने लगे। बार-बार ऐसा करने लगे; बीच बीच नाक के पास हाथ ले जाकर देखने लगे कि साँस चल रही हैं या नहीं। जान पड़ा, प्रयत्न विफल हो रहा है। इस तरह बहुत देर परीक्षा करते-करते भवानन्द का चेहरा कुछ प्रफुल्ल हुआ—ऊँगली में साँस के धीमे-धीमे बहने का कुछ अनुभव उन्होंने किया। तब और भी पत्तों का रस निचोड़ने लगे। क्रमशः साँस तेज़ चलने लगी। भवानन्द ने नाड़ी पर हाथ

रखकर देखा, नाड़ी चलने लगी थी। अन्त में धीरे धीरे पूर्व की ओर प्रथम प्रभात-राग के विकास की तरह, प्रभात-पद्म के प्रथम उन्मेष की तरह, प्रथम प्रेमानुभव की तरह कल्याणी आँखें खोलने लगीं। देखकर भवानन्द ने उस अर्द्ध-जीवित देह को घोड़े पर रखकर द्रुति गति से घोड़ा भगाते हुए नगर गये।

—

अठारहवाँ परिच्छेद

शाम होने से पहले सन्तान-सम्प्रदाय के लोग जान गये कि सत्यानन्द ब्रह्मचारी और महेन्द्र गिरफ्तार करके नगर के कारागार में कैद किये गये हैं। तब एक-एक, दो-दो, दस-दस, सौ-सौ सन्तान-सम्प्रदाय के लोग आ-आकर उस देवालय को घेरनेवाले अरण्य को भरने लगे। सभी हथियार लिये हुए। आँखों में गुस्से की चिनगारी, चेहरे पर दम्भ, होठों में प्रतिज्ञा। पहले सौ, फिर हजार, फिर दो हजार, इस तरह लोगों की संख्या बढ़ने लगी। तब मठ के द्वार पर खड़े हुए ज्ञानानन्द तलवार हाथ में लिये हुए ऊँचे स्वर से कहने लगे, “हम लोगों ने बहुत दिनों से सोच रक्खा है कि ये बयों के घोंसले तोड़कर यवनपुरी नष्टभ्रष्ट करके नदी में बहा देंगे। ये सुअरों के अङ्गु जलाकर माता वसुमती को फिर से पवित्र करेंगे। भाइयो, आज वह दिन आया है। हमारे गुरु के गुरु, परमगुरु, जो अनन्त ज्ञानमय हैं, सदा शुद्धाचार, जो लोगों का कल्याण करते हैं, देश का कल्याण करते हैं, सनातन-धर्म के पुनः प्रचार के लिए देह दे देने की जिन्होंने प्रतिज्ञा की है, जिन्हें हम विष्णु का अवतार मानते हैं, जो हमारी मुक्ति के उपाय हैं, वे आज मुसलमान के कारागार में कैद हैं। क्या हमारी तलवारों में धार नहीं?” हाथ फैलाकर ज्ञानानन्द ने कहा, “इन बाहों में क्या बल नहीं?” छाती ठोककर कहा, “इस हृदय में क्या साहस नहीं?—भाइयो, कहो, हरे मुरारे मधुकैटभारे—जिन्होंने मधुकैटभ का विनाश किया है, जिन्होंने हिरण्यकशिपु, कंस, दन्त-वक्र, शिशुपाल आदि दुर्जय असुरों को मारा है, जिनके चक्र के घर्घर-घाघ

से मृत्युञ्जय शम्भु भी डरे थे—जो अजेय हैं, युद्ध में जयदाता, हम उनके उपासक हैं, उनके बल से हमारी बाहों में अनन्त बल है। वे इच्छामय हैं, इच्छा करने से ही हम लड़ाई जीतेंगे। चलो, हम लोग वह यवनपुरी तोड़कर धूल में मिला दें; वे सुअरों के अड्डे जलाकर नदी में बहा दें; वे बयों के घोंसले तोड़कर तिनके हवा में उड़ा दें। कहो, हरे मुरारे मधुकैटभारे !”

तब उस कानन में बड़े भयङ्कर स्वर से सहस्र कण्ठों की एक साथ आवाज़ हुई, “हरे मुरारे मधुकैटभारे !” हजार तलवारें एक साथ झनझना उठीं। हजार बल्लमों के फलक एक साथ ऊपर को उठे। हजार तालों के बजने से वज्रनाद होने लगा। हजार ढोल योद्धाओं की कर्कश पीठों में तड़तड़ आवाज़ करने लगे। महाकोलाहल उठा; पशु डरकर वन से भगने लगे। चिड़ियाँ ऊँचे स्वर से बोलती हुई उड़-उड़कर आकाश में मँडलाने लगीं। उसी समय सैकड़ों जङ्गी ढोल एक साथ बज उठे—“हरे मुरारे मधुकैटभारे !” कहकर अरण्य से क्रतारों में सन्तानों का दल निकलने लगा। धीर-गम्भीर गति से क्रदम रखते हुए, ऊँचे स्वर से हरिनाम कहते हुए, वे उस अँधेरी रात में नगर की तरफ चले। वखों का मर्मर-शब्द, अस्त्रों की झनझनाहट, कण्ठों का अस्फुट निनाद, रह-रहकर उच्च स्वर से हरिनाम। धीरता से, गम्भीरता से, रोषपूर्वक, तेज से, उस सन्तान-वाहिनी ने नगर में आकर नगर को त्रस्त कर दिया। एकाएक यह वज्रपात देखकर नागरिक कौन कहाँ भगा, ठिकाना नहीं रहा। नगर के रत्नक हतबुद्धि होकर निश्चेष्ट हो रहे।

इधर सन्तान पहले राजकारागार गये। कारागार तोड़कर रत्नों को मार डाला और सत्यानन्द और महेन्द्र को मुक्त करके सिर पर लेकर नाचने लगे। तब बार बार ईश्वर-नाम की गूँज उठने लगी। सत्यानन्द और महेन्द्र को मुक्त करके ही उन्होंने जहाँ कहीं मुसलमान का घर देखा, उसमें आग लगा दी। तब सत्यानन्द ने कहा, “लौट चलो, व्यर्थ किसी की क्षति करने से

कोई प्रयोजन सिद्ध नहीं होगा।” सन्तानों के इस अत्याचार का संवाद पाकर देश के अधिकारियों ने उनके दमन के लिए परगना-सिपाहियों का एक दल भेजा। उनके सिर्फ बन्दूक ही नहीं, एक तोप भी साथ थी। उनके आने की खबर पाकर सन्तान आनन्द-कानन से निकल कर युद्ध के लिए बढ़े। परन्तु लाठी, बल्लम, तलवार और बीस-पच्चीस बन्दूकें तोप का मुकाबिला क्या करेंगी, सन्तानों का समूह हार-हारकर भगने लगा।

द्वितीय खण्ड

पहला परिच्छेद

शान्ति की थोड़ी उम्र में, निरे बचपन में, माता का वियोग हुआ था। जिन उपादानों से शान्ति का चरित्र तैयार हुआ है, यह उनमें एक प्रधान है। उसके पिता उपाध्यायक ब्राह्मण थे। उनके घर में कोई दूसरी स्त्री नहीं थी।

फलतः शान्ति के पिता जब पाठशाला में पढ़ाते थे, शान्ति उनके पास जाकर बैठी रहती थी। पाठशाला में कुछ लड़के रहते थे; शान्ति दूसरे समय उनके पास बैठकर खेलती थी, उनकी गोद में, पीठ पर चढ़ती थी, वे भी शान्ति को आदर देते थे।

इस बचपन में सदा पुरुषों के साथ रहने का पहला फल यह हुआ कि शान्ति ने लड़की की तरह धोती पहनना नहीं सीखा, या सीखकर छोड़ दिया। लड़के की तरह कोंछीदार धोती पहनना शुरू किया। उस समय कोई लड़की की जैसी धोती पहना देता था तो वह खोल डालती थी, फिर कोंछीदार पहनती थी। पाठशाला के लड़के खोंपा नहीं बाँधते, अतएव शान्ति भी कभी खोंपा नहीं बाँधती थी। उसका खोंपा बाँध भी कौन दे? पाठशाला के लड़के काठ के कंचे से उसके बाल सँवार देते थे, घुँघुराले बाल उसकी पीठ पर, कंधों पर, बाहों पर और गालों पर झूमते थे। छात्र चन्दन की बिन्दी लगाते थे और, और और जगह चन्दन लगाते थे, शान्ति भी बिन्दी लगाती थी और, और और जगह चन्दन लगाती थी, गले में यज्ञोपवीत पहनने को नहीं मिलता था, इसलिए शान्ति बहुत रोती थी। परन्तु संध्या-चन्दन के समय छात्रों के पास बैठकर उनका अनुकरण करते बाज़ नहीं आती थी। छात्रअध्यापक के न

रहने पर संस्कृत की अश्लील मिसालें देते हुए दो-एक शृङ्गारात्मक क्रिस्से-कहानियाँ कहते थे, तोते की तरह शान्ति ने वह सब भी सीखा—तोते की तरह, उनका अर्थ क्या है, कुछ भी नहीं जानती थी।

दूसरा फल यह हुआ कि शान्ति जब बड़ी हुई, तब लड़के जो कुछ पढ़ते थे, उनके साथ साथ वह भी सीखने लगी। व्याकरण का कुछ भी नहीं आता, परन्तु भट्टि, रघु, कुमार, नैषधादि के श्लोक व्याख्या-सहित याद करने लगी। देख-सुनकर शान्ति के पिता ने यद् भविष्यति तद् भविष्यति कहकर शान्ति को मुग्धबोध पढ़ाना आरम्भ किया। शान्ति बहुत जल्द जल्द सीखने लगी। अव्यापक विस्मय में आ गये। व्याकरण के साथ दो एक किताब साहित्य की पढ़ाई। इसके बाद सब खेल खत्म हो गया, पिता परलोक सिधार गये।

तब शान्ति बिना आश्रय के हो गई। पाठशाला उठ गई। छात्र चले गये। परन्तु शान्ति को वे लोग स्नेह करते थे, शान्ति को छोड़कर नहीं जा सके, दया करके एक छात्र उसे अपने यहाँ ले गया। बाद को ये सन्तान-सम्प्रदाय में गये और जीवानन्द नाम ग्रहण किया। हम इन्हें जीवानन्द ही कहते रहेंगे। तब जीवानन्द के माता-पिता जीते थे। उनके पास जीवानन्द ने कन्या का सविशेष परिचय दिया। माता-पिता ने पूछा, “अब इस दूसरे की लड़की का उत्तर-दायित्व कौन लेगा?” जीवानन्द ने कहा, “मैं ले आया हूँ, मैं ही लूँगा।” माता-पिता ने कहा, “अच्छा है।” जीवानन्द अविवाहित थे, शान्ति की विवाहवाली उम्र हो आई थी। जीवानन्द ने उससे विवाह किया।

विवाह के बाद सब लोग पश्चात्ताप करने लगे। सब समझे “काम अच्छा नहीं हुआ। शान्ति ने किसी तरह भी लड़की की जैसी धोती नहीं पहनी। किसी तरह भी बाल नहीं बाँधे। वह मकान के भीतर नहीं रहती थी। मुहल्ले के लड़कों के साथ खेलती थी। जीवानन्द के मकान के पास ही जंगल है, शान्ति अकेली जंगल में पैठकर, कहीं मोर हैं, कहीं हिरन हैं, कहीं दुर्लभ फूल-फल हैं, यह सब खोजती फिरती थी। सास-ससुर ने पहले मना किया, फिर

भला-बुरा कहा, बाद को मारकर कमरे में जंजीर चढ़ाकर क़ैद करने लगे। दबाव से शान्ति की तबियत बहुत उचटी। एक दिन दरवाज़े खुले पाकर किसी से कुछ कहे बिना शान्ति घर छोड़ कर चली गई।

जंगल में चुने चुने फूल चुनकर कपड़ा रँगकर शान्ति बालक-संन्यासी बनी, तब बंगाल भर में दल के दल संन्यासी घूमते थे। शान्ति भीख माँगकर खाती हुई जगन्नाथपुरी के रास्ते जाकर खड़ी हुई। कुछ ही देर बाद उस रास्ते में संन्यासियों का एक दल देख पड़ा। शान्ति उनके साथ मिली।

तब के संन्यासी अब के संन्यासियों की तरह नहीं थे। वे लोग दलबद्ध, सुशिक्षित, बलिष्ठ, युद्ध-विशारद और दूसरे दूसरे गुणों से युक्त थे। वे प्रायः राजा के विद्रोही थे, खज़ाना लूट कर खाते थे। बली लड़का मिलने पर वे चुरा लेते थे। उन्हें सुशिक्षित करके अपने सम्प्रदाय में मिला लेते थे। इसलिये उन्हें लड़के पकड़नेवाले कहते थे।

शान्ति बालक-संन्यासी के वेश में इन्हीं के एक सम्प्रदाय से मिली। वे लोग पहले उसके कोमल अङ्ग देखकर ग्रहण करने को राज़ी नहीं हुए, परन्तु शान्ति की बुद्धि की प्रखरता, चतुरता और कार्यदक्षता देखकर आदरपूर्वक दल में लिया। शान्ति उनके दल में रहकर व्यायाम करती थी, अस्त्र चलाना सीखती थी। इस तरह मिहनत करनेवाली और सहनशील हो गई। उनके साथ रहकर अनेक देश-देशान्तर का पर्यटन किया, अनेक लड़ाइयाँ देखीं और अस्त्र-विद्या सीखी।

क्रमशः उसके यौवन के लक्षण दिखे। बहुत-से संन्यासियों ने जाना कि वह छद्मवेशिनी स्त्री है। परन्तु संन्यासी प्रायः जितेन्द्रिय होते हैं; किसी ने कुछ नहीं कहा।

संन्यासियों में बहुत-से पण्डित थे। शान्ति संस्कृत में कुछ गति प्राप्त कर चुकी है, देखकर एक पण्डित संन्यासी ने उसे पढ़ाना शुरू किया। प्रायः संन्यासी जितेन्द्रिय होते हैं, कहा है; लेकिन सब नहीं होते। ये पण्डित भी नहीं

थे, अथवा ये शान्ति के नये यौवन के विकास से पैदा हुए लावण्य से मुग्ध होकर इन्द्रिय से बार-बार पीड़ित होने लगे। शिष्या को आदिरसाश्रित काव्य पढ़ाना शुरू किया। आदिरसाश्रित काव्यों की न सुनाई जानेवाली व्याख्याये सुनाने लगे। इससे शान्ति का अपकार न होकर कुछ उपकार हुआ। लज्जा किसे कहते हैं, शान्ति नहीं जानती; अब स्त्री-स्वभाव-सुलभ लज्जा आप आकर उपस्थित हुई। पौरुष-चरित्र पर निर्मल स्त्री-चरित्र की अपूर्व प्रभा आकर पड़ी। शान्ति के गुणों को चमकाने लगी। शान्ति ने पढ़ना छोड़ दिया।

व्याध जिस तरह हिंसी की तरह दौड़ता है, शान्ति के अध्यापक शान्ति को देखते ही उसकी तरफ उसी तरह दौड़ने लगे। परन्तु, व्यायाम आदि से शान्ति ने पुरुष का भी दुर्लभ बल प्राप्त किया था। अध्यापक पास आते थे, भापड़ और घूसों से उनकी पूजा करती थी—भापड़ और घूस से मामूली नहीं थे। एक संन्यासी महाराज ने एकान्त में पाकर बड़ी मजबूती से शान्ति का हाथ पकड़ा, शान्ति छुड़ा नहीं सकी। परन्तु संन्यासी के दुर्भाग्य से वह शान्ति का बाँया हाथ था, दाहिने हाथ से शान्ति ने उनके सर पर ऐसा घूसा मारा कि संन्यासी मूर्च्छित होकर गिर गये। शान्ति संन्यासी-सम्प्रदाय छोड़कर भग गई।

शान्ति निडर है। अकेली अपने गाँव की खोज करती चली। हिम्मत और बाहों के बल के भरोसे निर्विघ्नता से चली। भीख माँगकर अथवा जङ्गली फलों से पेट भरती हुई और बहुत-सी हाथा-पाइयों में जीतकर ससुराल पहुँची। देखा ससुर परलोक चले गये हैं, सास ने उसे जगह नहीं दी—जाति नहीं रहेगी। शान्ति बाहर निकल गई।

जीवानन्द मकान में थे। वे शान्ति के पीछे चले। रास्ते में शान्ति को पकड़कर पूछा, “तुम क्यों मेरा धर छोड़ गई थीं? इतने दिन कहाँ थीं?”

शान्ति ने सब सही सही कहा। जीवानन्द सब सच-भूठ समझ सकते थे। उन्होंने शान्ति की बात पर विश्वास किया।

अपसराओं की श्रू-विलास-युक्त कटाक्ष की ज्योति लेकर बड़े यत्न से तैयार सम्मोहन शर को कामदेव विवाहित दम्पति के प्रति छोड़कर व्यर्थ का खर्च नहीं करते। अंगरेज़ पौर्णमासी की रात को राजमार्ग पर गैस जलाते हैं, बंगाली तेल लगे सर पर तेल डालते हैं; मनुष्यों की बात दूर रही, चन्द्रदेव सूर्यदेव के आने के बाद भी कभी कभी आकाश में उगे रहते हैं; इन्द्र समुद्र पर पानी बरसाते हैं; जिस संदूक में रुपये भरे हैं, कुवेर उसी संदूक के लिए रुपये ले जाते हैं; यम ने प्रायः जिसके सब आदमियों को ग्रहण किया है, उसी के एक बाक़ो को ले जाते हैं; सिर्फ रतिपति का ऐसी बुद्धिहीनता का काम नहीं नज़र आता। जहाँ गँठबन्धन हुआ है वहाँ वे और मिहनत नहीं करते प्रजापति पर सब भार सौंपकर, जिसके हृदय का खून पी पायेंगे, उसकी तलाश में जाते हैं; परन्तु आज शायद पुष्पधन्वा का और कोई काम नहीं था, एकाएक दो पुष्पबाणों का उन्होंने अपव्यय किया। एक ने आकर जीवानन्द का हृदय पार किया, और एक दूसरे ने, आकर शान्ति के हृदय में चुभकर समझाया कि वह हृदय स्त्री का हृदय है—बड़ी कोमल चीज़। नये मेघ से मुक्त पहली वर्षा से धुली कली की तरह सहसा खिलकर शान्ति ने उत्फुल्ल नयनों से जीवानन्द के मुँह की ओर देखा।

जीवानन्द ने कहा, “मैं तुम्हें नहीं छोड़ूँगा। मैं जब तक लौट न आऊँ, तब तक तुम खड़ी रहो।”

शान्ति ने पूछा, “तुम लौटकर आवोगे तो?”

जीवानन्द कोई जवाब न देकर, किसी तरह बिना देखे, उस रास्ते के किनारे के नारियलों के कुञ्ज की छाँह में, शान्ति के होंठों पर होठ लगाकर, अमृत पिया सोवकर, चले गये।

मा को समझाकर जीवानन्द मा से बिदा हो आये। भैरवीपुर में फ़िल-हाल उनकी बहन निमाइ का विवाह हुआ था, बहनोई के साथ जीवानन्द का कुछ प्रेम था, जीवानन्द शान्ति को लेकर वहीं गये। बहनोई ने थोड़ी-सी जगह दी। जीवानन्द ने उस पर एक कुटोरा बनवाया; फिर शान्ति को लेकर वहीं सुखपूर्वक रहने लगे। पति के साथ रहते हुए शान्ति के चरित्र का पौरुष विलीन या प्रच्छन्न हो आया। रमणी के रमणी-चरित्र का नित्य नवोन्मेष हाने लगा। सुख के स्वप्न की तरह उनकी ज़िन्दगी पार हो रही थी; परन्तु सहसा वह सुख का स्वप्न टूटा। जीवानन्द सत्यानन्द के हाथ पड़कर, सन्तान-धर्म ग्रहण कर शान्ति को छोड़कर चले गये। त्याग के बाद उनकी पहली मुलाक़ात निमाइ की चतुरता से हुई। यही पहले खण्ड के किसी परिच्छेद में मैंने लिखा है।

दूसरा परिच्छेद

जीवानन्द के चले जाने पर शान्ति निमाइ के चबूतरे पर जाकर बैठी। निमाइ लड़की गोद में लिये हुए उसके पास आकर बैठी। शान्ति की आँखों में अब आँसू नहीं, शान्ति ने आँखें पोंछ कर मुँह प्रफुल्ल कर लिया है, मंद-मंद मुस्कुरा रही है। कुछ गम्भीर है, कुछ चिन्तित और अनमनी। निमाइ ने समझकर कहा, “फिर भी मुलाक़ात तो हुई।”

शान्ति ने कोई जवाब नहीं दिया, चुप रही। निमाइ ने देखा, शान्ति मन की बात कुछ नहीं कहेगी। शान्ति को मन की बात कहना पसंद नहीं, यह निमाइ जानती थी, इसलिए निमाइ ने कोशिश करके दूसरी बात उठाई, कहा, “देखो तो बहू, कैसी लड़की है।”

शान्ति ने पूछा, “लड़की कहाँ मिली ? तेरे लड़की कब हुई री ?”

निमाइ—तुम्हारी मौत हो, तुम्हें यम के दूत ले जायँ, यह दादा की लड़की है।

निमाइ ने शान्ति को जलाने के लिए यह बात नहीं कही। “दादा की लड़की है” अर्थात् दादा से उसे वह लड़की मिली है। शान्ति यह नहीं समझी। सोचा, निमाइ शायद कोंचने की कोशिश कर रही है। अस्तु, शान्ति ने जवाब दिया, “मैंने लड़की के बाप की बात नहीं पूछी, मा की बात पूछी है।”

उचित शास्ति पाकर अप्रतिभ होकर निमाइ ने कहा, “किसकी लड़की है, क्या जानूँ भई, दादा कहीं से उठा-पुठा लाये हैं, सो पूछने का तो अवसर ही नहीं मिला। लेकिन मन्वन्तर के दिन हैं, कितने आदमी लड़के-बच्चे रास्ता-घाट पर डाल जाते हैं, हमारे ही पास कितने लड़की-

लड़के बेचने आये थे, लेकिन दूसरों के लड़की-लड़के कौन खरीदे ?” (फिर उन आँखों में उसी तरह आँसू आये—निमी आँसू पोंछकर फिर कहने लगी), “लड़की बड़ी सुन्दर है, गोल-मटोल, चाँद जैसी, देखकर दादा से माँग लिया है।”

इसके बाद शान्ति बहुत देर तक निमाइ से तरह-तरह की बातचीत करती रही। कुछ देर में निमाइ के पति घर लौट आये, देखकर शान्ति उठकर अपने कुटीर में गई। झोंपड़े में जाकर दरवाज़ा बन्द करके चूल्हे से कुछ आग निकालकर रख दी, बाक़ी राख पर, अपने लिए जो भात पकाकर रक्खा था, वह फेंक दिया। इसके बाद खड़ो-खड़ी बहुत देर तक सोचकर अपने आप बोली, “इतने दिनों तक जो कुछ सोच रक्खा था, आज वह करूँगी। जिस आशा से इतने दिनों तक नहीं किया, वह सफल हुई है। सफल या निष्फल—निष्फल। जो सङ्कल्प किया है, वह करूँगी। एक बार के लिए जो प्रायश्चित्त है, सौ बार के लिए भी वही।”

यह सोचकर शान्ति ने भात चूल्हे में फेंक दिया। वन से फल तोड़ लाई। अन्न की जगह फल खाये। इसके बाद उसकी ढाकेवाली जिस साड़ी पर निमाइमणि की नज़र लगी थी, उसे निकाल कर उसकी किनारी नोच डाली। साड़ी का जो हिस्सा बचा उसे गेरु से अच्छी तरह रँगा। कपड़ा रँगने और सुखाने में शाम हो गई। शाम होने पर दरवाज़ा बन्द करके बड़े ताज्जुब के मामले में शान्ति लगी। सर के रूखे एड़ो तक आते हुए बालों का कुछ हिस्सा कैंची से काटकर अलग रख दिया। बाक़ी जो सर पर रहा, उसे बिनकर जटा तैयार की। रूखे बाल अपूर्व विन्यासवाले जटा-भार में परिणत हुए। इसके बाद गेरु वस्त्र का आधा फाड़कर शान्ति ने अँचल बनाकर पहना, बाक़ी आधे से हृदय बाँधा। घर में एक छोटा-सा दर्पण था, बहुत दिनों के बाद शान्ति ने उसे बाहर निकाला। निकालकर दर्पण में अपना वेश आप देखा। देखकर कहा, “हाय, किस तरह पूरा

उतारूँ ?” तब दर्पण फेंककर जो बाल कटे पड़े थे, उन्हें लेकर दाढ़ी-मूँछें बनाईं, लेकिन पहन नहीं सकी। सोचा, “राम राम ! यह भी होता है ? वे दिन—वह समय क्या अब है ? परन्तु बुढ़े के सबक सिखाने के लिए यह सब रख लेना अच्छा है।” यह सोचकर शान्ति ने दाढ़ी-मूँछें कपड़े में बाँध रखीं। इसके बाद घर से एक बड़ा मृग-चर्म निकालकर गले में गाँठ मारकर गले से जाँघ तक देह को ढका। इस तरह सजकर वह नवीन संन्यासी घर के भीतर धीरे-धीरे चारों तरफ देखने लगी। रात के दो पहर बीतने पर शान्ति उसी संन्यासी वेश में दरवाज़ा खोलकर अँधेरे में अकेली घने वन में पैठी। वन-देवियों ने उस निशीथ में वन में अपूर्व गीतध्वनि सुनी।

गीत

(१)

कहाँ चले घोड़े पर चढ़ कर ?
हमें न फेरो, चले हम समर ।
हर हर हर कह समर में रँगे,
रन-तग़्ग में हम कूदेंगे;
किसके हो तुम, कौन तुम्हारा,
क्यों देते हो हमें सहारा ?
नारी की अब चाह नहीं है,
गाओ रन के गीत उमड़कर ।

(२)

पैरों पडूँ. पियारे मेरे,
रहो सदा तुम मुझको घेरे ।

बजता है क्या रन का बाजा,
 नाच रहा तुरङ्ग यह साजा;
 मेरा मन उड़ रहा देखकर,
 मैं न रहूँगा, रहूँगा न घर;
 नारी की अब चाह नहीं है,
 गाओ रन के गीत उमड़ कर ॥

तीसरा परिच्छेद

दूसरे दिन आनन्दमठ के एकान्त कमरे में बैठे हुए भग्नोत्साह दो-तीन सन्तान-नायक बातचीत कर रहे थे। जीवानन्द ने सत्यानन्द से पूछा, “महाराज, देवता हमारे प्रति ऐसे अप्रसन्न क्यों हैं? किस दोष से हम लोग मुसलमानों से पराजित हुए?”

सत्यानन्द ने कहा, “देवता अप्रसन्न नहीं, लड़ाई में जय और पराजय दोनों हैं, उस दिन हम लोग जयो हुए थे, आज पराजित हुए हैं, अन्त में जय ही जय है। हमें निश्चित रूप से भरोसा होता है कि जिन्होंने इतने दिनों तक हम पर दया की है, वे शङ्ख-चक्र-गदा-पद्मधारी वनमाली फिर दया करेंगे। उनके चरण छूकर जिस महाव्रत में हम लोग व्रती हुए हैं, अवश्य ही वह व्रत हमें साधना होगा। विमुख होने पर हम लोग अनन्त नरक में पड़ेंगे। भावी मङ्गल के सम्बन्ध में मुझे सन्देह नहीं। परन्तु जिस तरह दैव की कृपा के बिना कोई काम सिद्ध नहीं हो सकता, उसी तरह पुरस्कार भी चाहिए। हम लोग हारे, इसका कारण यह है कि हम लोग निरस्त्र हैं। गोली-गोले, तोप और बन्दूकों के मुक्ताबिले लाठी, सेटा और बल्लमों से क्या होगा? अस्तु हमारे पुरुषकार का लाघव था, इसी लिए हम हारे। अब हमारा कर्त्तव्य है कि हम ऐसा करें कि हमारे भी उन अस्त्रों की कमी न रहे।”

जीवा०—यह बड़ा मुश्किल मुक्ताम है।

सत्या०—मुश्किल मुक्ताम है जीवानन्द? सन्तान होकर ऐसी बात तुम जबान पर लाये? सन्तान के लिए मुश्किल मुक्ताम है क्या?

जीवा०—किस तरह ये अस्त्र हम संगृहीत करें, आज्ञा कीजिए।

सत्या०—संग्रह के लिए आज रात को तीर्थ-यात्रा करूँगा। जब तक लौट न आऊँ, तब तक तुम लोग किसी उत्तरदायी काम में हाथ न लगाना; परन्तु सन्तानों की एकता बचाये रखना। उनके भोजन-वस्त्र की कमी पूरी करते रहना और माता की युद्ध में विजय होने के लिए अर्थवाला कोष भरते रहना। यह भार तुम दो आदमियों पर रहा।

भवानन्द ने कहा, “तीर्थयात्रा करते हुए यह सब कैसे इकट्ठा कीजिएगा ? गोली-गोले, तोप-बन्दूक खरीद कर भेजने में बड़ा हल्ला उठ सकता है। और इतनी तोप-बन्दूकें पाइएगा भी कहाँ ? बेचेगा भी कौन ? लायेगा भी कौन ?

सत्या०—खरीदकर हम काम नहीं चला सकेंगे। मैं कारीगर भेज दूँगा, यहीं तैयार करवाना होगा।

जीवा०—वह क्या ? इसी आनन्दमठ में ?

सत्या०—ऐसा भी कहीं होता है ? इसका उपाय मैं बहुत दिनों से सोचता आ रहा हूँ। ईश्वर ने आज इसका सुयोग कर दिया है। तुम लोग कह रहे थे, भगवान् प्रतिकूल हैं; मैं देखता हूँ, वे अनुकूल हैं।

भवा०—कहाँ कारखाना होगा ?

सत्या०—पदचिह्न में।

जीवा०—वह क्या ? वहाँ किस तरह होगा ?

सत्या०—नहीं तो फिर किस लिए मैंने महेन्द्रसिंह को यह व्रत ग्रहण करने के लिए इतना दौन किया ?

भवा०—महेन्द्र ने क्या व्रत ग्रहण किया है ?

सत्या०—व्रत ग्रहण किया नहीं, करेगा। आज रात को उसे दीक्षित करूँगा।

जीवा०—कहाँ महेन्द्रसिंह को व्रत ग्रहण कराने के लिए कौन-सी दीनता बसकी की गई, मैंने नहीं देखी। उसकी स्त्री-कन्या की कैसी हालत हुई, कहाँ वे रखी गई ? नदी के किनारे एक लड़की पाकर मैं उसे अपनी बहन के यहाँ

रख आया हूँ। उस लड़की के पास एक सुन्दरी स्त्री मरी पड़ी थी। वे तो महेन्द्र की स्त्री-कन्या नहीं? मेरा ऐसा ही खयाल हुआ था।

सत्या०—वही महेन्द्र की स्त्री-कन्या हैं।

भवानन्द चौंक उठे। तब वे समझे कि जिस स्त्री को दवा के बल से उन्होंने फिर से जिलाया है, वही महेन्द्र की स्त्री कल्याणी है; परन्तु इस समय कोई बात खोलना उन्होंने आवश्यक नहीं समझा।

जीवानन्द ने पूछा, “महेन्द्र की स्त्री मरी किस तरह?”

सत्या०—ज़हर खाकर।

जीवा०—क्यों ज़हर खाया?

सत्या०—भगवान् ने उसे जान देने का स्वप्न में आदेश दिया था।

भवा०—स्वप्न का वह आदेश क्या सन्तानों के कार्योंद्वार के लिए हुआ था?

सत्या०—महेन्द्र से ऐसा ही सुना है। अब सान्ध्य मुहूर्त्त आ गया है, मैं सायंकृत्य करने चला। इसके बाद नये सन्तानों को दीक्षित करूँगा।

भवा०—सन्तानों को? क्या महेन्द्र के सिवा कोई और भी आपका अपना शिष्य होने की स्पर्धा रखता है?

सत्या०—एक और नया आदमी है। पहले कभी मैंने उसे नहीं देखा। आज नये नये मेरे पास आया है। वह बहुत ही तरुण युवा है। मैं उसके आकार, इङ्गित और बातचीत से बहुत प्रसन्न हुआ हूँ। वह खालिस सेना है, ऐसा मालूम दिश। उसे सन्तान का काम सिखाने का भार जीवानन्द पर रहा। क्योंकि जीवानन्द दूसरे का चित्त खींचने में बड़े दक्ष हैं। मैं चला, तुम लोगों के लिए एक उपदेश बाक़ी रह गया है। अच्छी तरह मन लगाकर सुनो।

तब दोनों ने हाथ जोड़कर निवेदन किया—“आज्ञा कीजिए।”

सत्यानन्द ने कहा, “तुम दोनों ने अगर कोई अपराध किया हो या मेरे

लौट आने के पहले तक करो, तो बिना मेरे आये उसका प्रायश्चित्त न करना। मेरे आने पर प्रायश्चित्त अवश्य ही किया जायगा।”

यह कह कर सत्यानन्द अपनी जगह चले गये। भवानन्द और जीवानन्द दोनों ने एक दूसरे के मुँह की ओर देखा।

भवानन्द ने पूछा, “तुम पर है क्या ?”

जीवानन्द—जान पड़ता है बहन के यहाँ महेन्द्र की लड़की रखने गया था।

भवा०—इसमें क्या अपराध है ? यह तो निषिद्ध नहीं। ब्राह्मणी से मुलाक़ात कर आये हो क्या ?

जीवा०—जान पड़ता है, गुरुदेव ऐसा ही सोचते हैं।

चौथा परिच्छेद

संध्या के कृत्य समाप्त कर महेन्द्र को बुलाकर सत्यानन्द ने आदेश दिया, “तुम्हारी लड़की जीती है।”

महे०—कहाँ महाराज ?

सत्या०—तुम मुझे महाराज क्यों कह रहे हो ?

महे०—सब कहते हैं, इसलिए। मठ के अधिकारियों का राजा सम्बोधन करना चाहिए। मेरी लड़की कहाँ है महाराज ?

सत्या०—यह सुनने के पहले एक बात का सही-सही उत्तर दे। तुम सन्तान-धर्म ग्रहण करोगे ?

महे०—मन ही मन मैंने ग्रहण करने का निश्चय किया है।

सत्या०—तो लड़की कहाँ है, सुनना न चाहो।

महे०—क्यों महाराज ?

सत्या०—जो इस व्रत को ग्रहण करता है, उसे स्त्री, पुत्र, कन्या, स्वजन, किसी से भी सम्बन्ध नहीं रखना चाहिए। स्त्री, पुत्र, कन्या का मुँह देखने पर भी प्रायश्चित्त है। जब तक सन्तानों की मनस्कामना सिद्ध नहीं होती, तब तक तुम कन्या का मुँह नहीं देख पाओगे। इसलिए यदि सन्तान-धर्म-ग्रहण स्थिर कर लिया हो, तो कन्या की खोज लेकर क्या करोगे, देख तो पाओगे नहीं।

महे०—यह कठिन नियम क्यों है प्रभो ?

सत्या०—सन्तानों का काम बड़ा कठिन काम है। जो सर्वत्यागी है, उसके बिना दूसरा कोई इस काम के योग्य नहीं। माया की रस्सी से जिसका

चित्त बँधा है, वह डोर से बँधी पतङ्ग की तरह (बिना हवा के) मिट्टी छोड़कर आसमान पर नहीं उड़ सकता ।

महे०—महाराज, बात अच्छी तरह नहीं समझ सका । जो स्त्री-पुत्र का मुँह देखता है, वह क्या किसी बड़े काम का अधिकारी नहीं ?

सत्या०—पुत्र-कलत्र के मुँह देखने पर हम लोग देवता का काम भूल जाते हैं । सन्तान-धर्म का नियम यह है कि जिस दिन प्रयोजन होगा, उसी दिन सन्तान का जान की बाज़ी लगानी पड़ेगी तुम्हारी कन्या का मुँह तुम्हें याद आया तो क्या तुम उसे छोड़कर जान पर खेल सकेगो ?

महे०—तो क्या न देखने पर ही कन्या का भूल जाऊँगा ?

सत्या०—न भूल सको तो यह व्रत ग्रहण न करना ।

महे०—क्या सभी सन्तानों ने पुत्र-कलत्र को भूलकर व्रत ग्रहण किया है ? तो सन्तान संख्या में बहुत थोड़े हैं ।

सत्या०—सन्तान दो तरह के हैं, दीक्षित और अदीक्षित । जो अदीक्षित हैं, वे संसारी हैं या भिखारी । वे केवल युद्ध के समय आते हैं, लूट का हिस्सा या दूसरा पुरस्कार पाकर चले जाते हैं । जो दीक्षित हैं वे सर्वत्यागी हैं । वे सम्प्रदाय के कर्त्ता हैं । तुमसे अदीक्षित सन्तान होने का अनुरोध हम नहीं करते । लड़ाई के वक्त के लिए लाठी-बल्लम चलानेवाले बहुत हैं । दीक्षित हुए बग़ैर तुम सम्प्रदाय के किसी भी बड़े काम के अधिकारी नहीं हो सकेगो ।

महे०—दीक्षा क्या है ? दीक्षित क्यों होना होगा ? मैंने तो इससे पहले ही मन्त्र ग्रहण किया है ।

सत्या०—वह मन्त्र छोड़ना होगा । मेरे पास फिर से मन्त्र लेना होगा ।

महे०—मन्त्र का त्याग किस तरह करूँगा ?

सत्या०—मैं वह पद्धति कहे देता हूँ ।

महे०—नया मन्त्र क्यों लेना होगा ?

सत्या०—सन्तान वैष्णव है ।

महे०—यह समझ में नहीं आता, सन्तान वैष्णव क्यों है ? वैष्णवों का तो अहिंसा ही परम धर्म है ।

सत्या०—वे चैतन्यदेव के वैष्णव हैं । नास्तिक बौद्धधर्म के अनुकरण में जा वैष्णवता पैदा हुई थी, उसमें उसी के लक्षण हैं । सच्चे वैष्णव-धर्म का लक्षण है दुष्टों का दमन और शिष्टों का उद्धार । क्योंकि विष्णु ही संसार के पालनेवाले हैं । दस बार देह धारण कर पृथ्वी का उद्धार किया है । केशी, हिरण्यकशिपु, मधुकैटभ, मुर, नरक आदि दैत्यों को, रावण आदि राजाओं का कंस, शिशुपाल आदि राजों का उन्हीं ने युद्ध में मारा था । वही जेता, जय-दाता, पृथ्वी के उद्धारकर्ता और सन्तानों के इष्ट देवता हैं, चैतन्यदेव का वैष्णव-धर्म सच्चा वैष्णव-धर्म नहीं—वह सिर्फ आधा धर्म है । चैतन्यदेव के विष्णु प्रेममय हैं, परन्तु भगवान् केवल प्रेममय नहीं, वे अनन्त शक्तिमय भी हैं । चैतन्यदेव के विष्णु केवल प्रेममय हैं, सन्तानों के विष्णु केवल शक्तिमय । हम दोनों वैष्णव हैं, परन्तु दोनों आधे वैष्णव हैं । बात समझे ?

महे०—नहीं, यह कैसी नई नई बात सुन रहा हूँ । क्लासिक्वाज़ार में एक पादरी से मेरी मुलाकात हुई थी, उसने ऐसी ही बातें सुनाई थीं, अर्थात् ईश्वर प्रेममय हैं, तुम लाग ईसा से प्रेम करो । आपकी ऐसी ही बात है ।

सत्या०—जिस तरह की बात हमारे चौदह पुत्र से लोग समझते आये हैं, वैसी ही बात मैं तुम्हें समझा रहा हूँ । ईश्वर त्रिगुणात्मक हैं, यह तो तुमने सुना है ?

महे०—हाँ, सत्त्व, रजः, तमः—ये तीन गुण हैं ।

सत्या०—ठीक । इन तीनों गुणों की अलग अलग उपासनायें हैं । सत्त्व-गुण से उनके दया-दानिष्ठ आदि की उत्पत्ति है । उनकी उपासना भक्ति से करोगे । चैतन्य का सम्प्रदाय यह करता है । रजोगुण से उनकी शक्ति की उत्पत्ति है, इसकी उपासना युद्ध से—देवद्वेषियों के निधन से है, हम लोग यह

करते हैं। और तमोगुण से भगवान् ने चतुर्भुज आदि रूप अपनी इच्छा से धारण किये हैं। चन्दन-माला आदि चढ़ाकर उस गुण की पूजा की जाती है; साधारण लोग वैसा करते हैं। अब समझे ?

महे०—समझा। तो फिर सन्तान लोग सिर्फ उपासकों का सम्प्रदाय है ?

सत्या०—हाँ, हम राज्य नहीं चाहते—सिर्फ, मुसलमान ईश्वर से द्वेष रखते हैं, इसलिए सवंश उनका नाश करना चाहते हैं।

— - —

पाँचवाँ परिच्छेद

सत्यानन्द बातचीत समाप्त करके महेन्द्र के साथ मठ के देवालय में, जहाँ वह अपूर्व शोभावाली बड़े आकार की चतुर्भुज मूर्ति विराज रही है, गये। वहाँ तब अपूर्व शोभा थी। चाँदी, सोने और रत्नों से रञ्जित बहुविध दीपों से मन्दिर आलोकित हो रहा था। फूलों की राशियाँ सुशोभित होकर मन्दिर के सुगन्धित कर रही थीं। मन्दिर में एक आदमी और बैठा हुआ मधुर स्वर से “हरे मुरारे” कह रहा था। सत्यानन्द के मन्दिर में जाते ही, उसने उठकर प्रणाम किया। ब्रह्मचारी ने पूछा, “तुम दीक्षित होगे ?”

उसने कहा, “मुझ पर कृपा कीजिए।”

तब उसे और महेन्द्र को सम्बोधन करके सत्यानन्द ने कहा, “तुम लोग नियमानुसार नहाये हुए, संयत और उपवास तो किये हुए होगे ?”

उत्तर—जी हाँ।

सत्या०—तुम लोग भगवान् के सामने प्रतिज्ञा करो, सन्तान-धर्म के नियम तुम पालोगे ?

दोनों—पालेंगे।

सत्या०—जितने दिनों तक माता का उद्धार न हो, उतने दिनों के लिए गृहधर्म छोड़ेंगे ?

दोनों—छोड़ेंगे।

सत्या०—माता-पिता का छोड़ेंगे ?

दोनों—छोड़ेंगे।

सत्या०—भाई-बहन ?

दोनों—छोड़ेंगे।

सत्या०—स्त्री-पुत्र ?

दोनों—छोड़ेगे ।

सत्या०—आर्तमय-स्वजन ? दास-दासी ?

दोनों—सब कुछ छोड़ा ।

सत्या०—धन-सम्पद्-भोग ?

दोनों—सब त्याज्य हुआ ।

सत्या०—इन्द्रियों को जीतोगे ? स्त्री के साथ कभी एक आसन पर नहीं बैठोगे ?

दोनों—नहीं बैठेंगे, इन्द्रियों को जीतेंगे ।

सत्या०—भगवान् के सामने प्रतिज्ञा करो, अपने लिए या स्वजन के लिए अर्थोपाजन नहीं करोगे ? जो कुछ पैदा करोगे वह वैष्णव-भण्डार में दोगे ?

दोनों—सब वैष्णव-भण्डार में देंगे ?

सत्या०—सनातन-धर्म के लिए स्वयं अस्त्र लेकर लड़ोगे !

दोनों—लड़ेंगे ।

सत्या०—लड़ाई में कभी पीठ नहीं दिखाओगे ?

दोनों—नहीं ।

सत्या०—यदि प्रतिज्ञा-भङ्ग हो ?

दोनों—जलती चिता में पैठकर या ज़हर खाकर जान देंगे ।

सत्या०—एक बात और है—जाति । तुम लोग किस जाति के हो ? महेन्द्र कायस्थ हैं, दूसरे तुम किस जाति के हो ?

दूसरे व्यक्ति ने कहा, “मैं ब्राह्मण-कुमार हूँ ।”

सत्या०—उत्तम । तुम लोग जाति छोड़ सकेोगे ? सब सन्तान एकजातीय हैं । इस महाव्रत में ब्राह्मण-शूद्र-विचार नहीं । तुम लोग क्या कहते हो ?

दोनों—हम वैसा विचार नहीं रखेंगे, हम सब एक माता के सन्तान हैं ।

सत्या०—तो तुम लोगों का दीक्षित करूँगा। तुम लोगों ने जो प्रतिज्ञायें कीं उन्हें तोड़ना नहीं। मुरारि स्वयम् इसके साक्षी हैं। जो रावण, कंस, हिरण्य-कशिपु, जरासन्ध और शिशुपाल आदि के विनाश के कारण हैं, जो सबके अन्तर के जाननेवाले, सर्वजयी, सर्वशक्तिमान् और सर्वनियन्ता हैं, जो इन्द्र के वज्र और मार्जार के नखों में समानरूप से वास करते हैं, वे प्रतिज्ञा तोड़ने-वाले का विनष्ट करके उसे अनन्त नरक में भेजेंगे।

देवों—ऐसा ही हो।

सत्या०—तुम लोग गाओ “वन्दे मातरम्।”

देवों ने उस मन्दिर में मातृस्तोत्र गाया। ब्रह्मचारी ने तब उन्हें विधि-पूर्वक दीक्षित किया।

— — —

छठा परिच्छेद

दीक्षा पूरी कर सत्यानन्द महेन्द्र को बहुत ही एकान्त स्थान में ले गये। दोनों के बैठने पर सत्यानन्द कहने लगे, “देखो बत्स, तुमने जो यह महाव्रत ग्रहण किया, इससे भगवान् हम पर अनुकूल हैं, ऐसा समझ में आता है। तुमसे माता का महत्कार्य अनुष्ठित होगा। तुम यत्नपूर्वक मेरा आदेश सुनो। तुम्हें जीवानन्द और भवानन्द के साथ वन-वन घूमकर लड़ने के लिए मैं नहीं कहता। तुम पदचिह्न लौट जाओ। अपनी जगह रहकर ही तुम्हें सन्यास-धर्म पालन करना होगा।”

महेन्द्र सुनकर ताज्जुब में आये, उनका चेहरा उतर गया। ब्रह्मचारी कहने लगे, “इस समय हमारा कोई आश्रय नहीं; ऐसी जगह नहीं कि प्रबल सेना आकर हमें घेरे तो हम दरवाज़े बन्दकर भोजन की सामग्री लेकर दस दिन निर्भिन्न रहें। हमारे कोई गढ़ नहीं। तुम्हारे अट्टालिका हैं, तुम्हारा गाँव तुम्हारे अधिकार में है। मेरी इच्छा है, वहाँ एक गढ़ तैयार करूँ। बड़ी खाई और चहारदीवार से पदचिह्न को घेर कर जगह-जगह मार्कें बना देने और बाँध पर तोपें बैठा देने पर अच्छा गढ़ बन सकता है। तुम घर जाकर रहे, क्रमशः दो हजार सन्तान वहाँ पहुँचेंगे। उनसे गढ़, बाँध, मार्कें, यह सब बनवाते रहना। तुम वहाँ एक अच्छा लोहे का कमरा बनवाना। वहाँ सन्तानों का कोश रहेगा। सोने से भरे सन्दूक एक एक करके तुम्हारे पास भेजवाता रहूँगा। उसी अर्थ से तुम यह सब काम पूरा करोगे। और मैं अनेकानेक जगहों से दत्त शिल्पी बुलवा रहा हूँ। उनके आने पर तुम पदचिह्न में कार-खाने खोल दोगे। वहाँ तोप, गोले, बारूद, बन्दूक तैयार कराओगे। इसी लिए तुम्हें घर जाने को कह रहा हूँ।”

महेन्द्र स्वीकृत हुए।

सातवाँ परिच्छेद

महेन्द्र सत्यानन्द के पैर छूकर बिदा होने पर उनके साथ जो दूसरा शिष्य दीक्षित हुआ था, उसने आकर सत्यानन्द को प्रणाम किया। सत्यानन्द ने आशीर्वाद देकर काले हिरन के चमड़े पर बैठने की आज्ञा दी। दूसरी दूसरी मीठी बातों के बाद पूछा, “क्यों, कृष्ण पर तुम्हारी प्रगाढ़ भक्ति है या नहीं?”

शिष्य ने कहा, “किस तरह कहूँ ? मैं जिस उपाय को भक्ति समझता हूँ, मुमकिन, वह बगुले की भक्ति हो या अपने को धोखा देना।”

खुश होकर सत्यानन्द ने कहा, “तुमने बहुत सही सोचा है। जिससे भक्ति दिन दिन प्रगाढ़ हो, वही अनुष्ठान करना। मैं आशीर्वाद देता हूँ, तुम्हारा प्रयत्न सफल होगा। क्योंकि तुम बहुत कच्ची उम्र के हो। बेटे, तुम्हें किस नाम से पुकारें, यह अभी तक नहीं पूछा।”

नये सन्तान ने कहा, “आपकी जैसी अभिरुचि हो, मैं वैष्णवों का दासानुदास हूँ।”

सत्या०—तुम्हारी थोड़ी उम्र देखकर तुम्हें नवीनानन्द कहने की इच्छा होती है, इसलिए यही नाम तुम लो। परन्तु एक बात पृच्छते हैं, तुम्हारा पहले क्या नाम था ? यदि कहने में कोई बाधा हो तो भी कहना। हमसे कहने पर दूसरे कानों में बात नहीं जायगी। सन्तान-धर्म का मर्म यह है जो नहीं कहना वह भी गुरु से कहना चाहिए। कहने पर कोई हानि नहीं होती।

शिष्य—मेरा नाम शान्तिराम देवशर्मा है।

सत्या०—तुम्हारा नाम शान्तिमणि पापिष्ठा है।

यह कहकर सत्यानन्द ने शिष्य की गहरी काली डेढ़ हाथ लम्बी दाढ़ी बायें हाथ से लपेटकर एक झटका दिया। लगाई दाढ़ी खुलकर गिर गई। सत्यानन्द ने कहा, “छिः मा, मुझसे धोखेबाजी !—और अगर मुझे ही धोखा देगी तो इस उम्र में डेढ़ हाथ की दाढ़ी क्यों ? और, दाढ़ी भी छोटी करती,

तो गले की आवाज़ और आँखों की चितवन भी क्या छिपा सकती ? अगर मैं ऐसा बेवकूफ़ ही होता तो क्या इतने कामों में हाथ लगाता ?”

कलमुँही शान्ति तब कुछ देर दोनों आँखें छिपाकर सर झुकाये बैठी रही। कुछ देर बाद आँखों से हथेलियाँ हटाकर बूढ़े के मुँह पर विलोल कटाक्ष कर बोली, “प्रभो, मैंने दोष ही क्या किया है ? स्त्री की बाहों में क्या कभी बल नहीं रहता ?”

सत्या०—गोष्पद में जैसे जल।

शान्ति—सन्तानों के बाहुबल की क्या कभी परीक्षा लेते है ?

सत्या०—लेते हैं।

यह कहकर सत्यानन्द ने इसपात का एक धनुष और लोहे का कुछ लम्बा तार लाकर दिया, कहा, “इस इस्पात के धनुष में लोहे का यह तार गुण के तौर पर चढ़ाना पड़ता है। दो हाथ का लम्बा गुण है। गुण चढ़ाते-चढ़ाते धनुष सीधा हो जाता है; जो गुण चढ़ाता है, उसे दूर फेंक देता है। जो गुण चढ़ा सकता है, वही सही-सही बलवान् है।”

धनुष और गुण की अच्छी तरह परीक्षा कर शान्ति ने कहा, “क्या सभी सन्तान इस परीक्षा में उत्तीर्ण हुए हैं ?”

सत्या०—नहीं, इससे सिर्फ़ उनका बल समझा गया है।

शान्ति—क्या कोई इस परीक्षा में उत्तीर्ण नहीं हुए ?

सत्या०—सिर्फ़ चार आदमी हुए हैं।

शान्ति—क्या मैं पूछ सकती हूँ, वे कौन-कौन है ?

सत्या०—मुमानियत कोई नहीं, एक आदमी मैं हूँ।

शान्ति—और ?

सत्या०—जीवानन्द, भवानन्द, ज्ञानानन्द।

शान्ति ने धनुष लिया, तार लिया, आसानी से उसमें गुण चढ़ाकर गुरु के पैरों के पास फेंक दिया।

सत्यानन्द ताज्जुब में आये, कुछ डरे और चुप हो रहे। कुछ देर बाद कहा, “यह क्या, तुम देवी हो या मानवी?”

हाथ जोड़कर शान्ति ने कहा, “मैं साधारण मानवी हूँ, परन्तु मैं ब्रह्म-चारिणी हूँ।”

सत्या०—वह भी कैसे ? क्या तुम बालविधवा हो ? नहीं, बालविधवाओं के भी इतना बल नहीं होता, क्योंकि वे एक वक्त भोजन करती हैं।

शान्ति—मैं सुहागिन हूँ।

सत्या०—क्या तुम्हारे पति निरुद्दिष्ट हैं ?

शान्ति—उद्दिष्ट है। उनके उद्देश्य में ही आई हूँ।

एकाएक कटे बादलों की धूप की तरह सत्यानन्द के चित्त को उनकी स्मृति ने चमका दिया। उन्होंने कहा, “मुझे याद आया, जीवानन्द की स्त्री का नाम शान्ति है। क्या तुम जीवानन्द की ब्राह्मणी हो ?”

इस बार जटा के भार से नवीनानन्द ने मुँह छिपाया, जैसे कमलों पर कुछ सूँड़े हाथियों की पड़ीं। सत्यानन्द कहने लगे, “क्यों यह पापाचरण करने आई?”

शान्ति एकाएक जटाभार पीठ पर करके सर उठाकर बोली, “पापाचरण क्या है प्रभो ? पत्नी पति का अनुसरण करे तो वह पापाचरण है ? सन्तान-धर्मशास्त्र यदि इसे पापाचरण कहे तो सन्तान-धर्म अधर्म है। मैं उनकी सह-धर्मिणी हूँ, वे धर्मावरण कर रहे हैं, मैं उनके साथ धर्माचरण करने आई हूँ।”

शान्ति की तेजस्विनी वाणी सुन कर उन्नत ग्रीवा, स्फीत वक्ष, कम्पित अधर और उज्ज्वल अथच अश्रुप्लुत आँखें देखकर सत्यानन्द खुश हुए, बोले, “तुम साध्वी हो, परन्तु देखो माँ, पत्नी केवल गृहधर्म में सहधर्मिणी है, वीर-धर्म में रमणी कौन है ?

शान्ति—कौन महावीर अपत्नीक होकर वीर हुए हैं ? राम, सीता न होने पर, क्या वीर होते ? अर्जुन के कितने विवाह हैं, गिनिए तो सही; भीम के जितना बल है उतनी पत्नियाँ हैं। कितने कहूँ, आपसे कहना भी क्यों होगा ?

सत्या०—बात सच है, परन्तु युद्धक्षेत्र में कौन वीर स्त्री लेकर आता है ?

शान्ति—अर्जुन जब यादवी सेना से अर्द्धरिक्त में युद्ध कर रहे थे, कौन उनका रथ चला रही थी ? द्रौपदी साथ न होती तो क्या पाण्डव कुरुक्षेत्र की लड़ाई लड़ते ?

सत्या०—सही है, लेकिन साधारण मनुष्यों का मन स्त्रियों में आसक्त है और वह उन्हें काम से अलग करता है। इसी लिए सन्तान-जाति का व्रत ही यह है कि स्त्री-जाति के साथ एक आसन पर सन्तान नहीं बैठेंगे। जीवानन्द मेरा दाहना हाथ है। तुम मेरा दाहना हाथ तोड़ने आई हो ?

शान्ति—मैं आपके दाहने हाथ का बल बढ़ाने आई हूँ। मैं ब्रह्मचारिणी हूँ, प्रभु के पास ब्रह्मचारिणी ही रहूँगी। मैं सिर्फ धर्माचरण के लिए आई हूँ, पति-दर्शन के लिए नहीं। मैं विरह के दुख से व्याकुल नहीं। पति ने जो धर्म ग्रहण किया है, मैं उसकी हिस्सेदार क्यों न होऊँ ? इसी लिए आई हूँ।

सत्या०—अच्छी बात है। तुम्हारी कुछ दिन परीक्षा लेकर देखूँ।

शान्ति ने पूछा, “क्या मैं आनन्दमठ में रह सकूँगी ?”

सत्या०—आज और कहाँ जाओगी ?

शान्ति—इसके बाद ?

सत्या०—माता भवानी की तरह तुम्हारे भी माथे में आग है, सन्तान-सम्प्रदाय को क्यों जलाओगी ?

यह कहकर बाद को आशीर्वाद देकर सत्यानन्द ने शान्ति को बिदा किया।

शान्ति ने मन ही मन कहा, “अच्छा बूढ़े बाबाजी, मेरे माथे में आग है। मैं जले माथवाली हूँ या तुम्हारी अम्मा जले माथवाली है ?”

वस्तुतः सत्यानन्द का ऐसा अभिप्राय नहीं था, आँखों की बिजली की बात ही उन्होंने कही थी, लेकिन ऐसा भी कभी बुढ़ापे में किसी तरुणी को कहा जाता है ?

आठवाँ परिच्छेद

उस रात शान्ति को मठ में रहने की आज्ञा मिली थी, इसलिए कमरा खोजने लगी। बहुत-से कमरे खाली पड़े थे। गोवर्द्धन नाम का एक परिचारक था, वह भी छोटा-मोटा सन्तान था, दिया हाथ में लेकर कमरे दिखाता हुआ घूमने लगा। कोई भी कमरा शान्ति को पसन्द नहीं आया। हताश होकर गोवर्द्धन लौटकर शान्ति के सत्यानन्द के पास ले चला। शान्ति ने कहा, “भाई सन्तान, इधर जो कुछ कमरे रह गये हैं, ये नहीं देखे गये।”

गोवर्द्धन ने कहा, “वे सब बहुत अच्छे कमरे हैं सही, परन्तु उनमें आदमी हैं।”

शान्ति—कौन-कौन हैं ?

गोवर्द्धन—बड़े-बड़े सेनापति हैं।

शान्ति—बड़े-बड़े सेनापति कौन-कौन ?

गोव०—भवानन्द, जीवानन्द, धीरानन्द, ज्ञानानन्द। आनन्दमठ आनन्द-मय है।

शान्ति—कमरे देखें तो, चलो।

गोवर्द्धन शान्ति के पहले धीरानन्द के कमरे में ले गया। धीरानन्द महाभारत का द्रोणपर्व पढ़ रहे थे। अभिमन्यु ने किस तरह सप्तस्थियों के साथ लड़ाई की थी, उसी में मन लगा हुआ था, उन्होंने बात नहीं की। शान्ति वहाँ से बिना कुछ कहे चली गई।

बाद के शान्ति भवानन्द के कमरे में पैरी। भवानन्द तब निगाह उठाये हुए एक मुँह सोच रहे थे। किसका मुँह है, यह नहीं मालूम, किन्तु मुँह बड़ा सुन्दर है, काँक्षी घुँघराली, खुशबूदार अलकें कानों तक फैली हुई भौंहों पर पड़ रही

हैं, बीच में अनिन्द्य त्रिकोण ललाट मृत्यु की कराल छाया में डूबा हुआ। जैसे वहाँ मृत्यु और मृत्युञ्जय लड़ रहे हैं। आँखें मुदी हुईं, भौंहें स्थिर, होंठ नीले, गण्ड पाण्डुर, नासा शीतल, वन उन्नत, हवा बख उड़ा रही है। इसके बाद जैसे शरत् के मेघों में ढँका चाँद क्रमशः मेघों को अपनी चाँदनी से उद्भासित करके अपना सौन्दर्य फैलाता है, जिस तरह सबह का सूरज तरङ्गों के आकार की मेघमाला को क्रमशः सोने से रँगकर खुद प्रकाशित होता है, दिशाओं को चमका देता है, जल-स्थल और क्रीट-पतङ्गों को खुश कर देता है, उसी तरह उस शव में जीवन की शोभा का संचार हो रहा था। अहा, कैसी शोभा ! भवानन्द यही सोच रहे थे, उन्होंने भी कोई बात नहीं की। कल्याणी के रूप से उसका हृदय जल गया था, शान्ति के रूप पर उसने निगाह नहीं डाली।

शान्ति तब दूसरे कमरे में गई। पूछा—“यह किसका कमरा है ?”

गोवर्द्धन ने कहा—“जीवानन्द महाराज का।”

शान्ति—वह फिर कौन है ? कहाँ, यहाँ तो कोई नहीं ?

गोवर्द्धन—कहीं गये है, अभी आयेंगे।

शान्ति—यह कमरा सब कमरों में अच्छा है।

गोव०—लेकिन यह कमरा तो नहीं होगा।

शान्ति—क्यों ?

गोव०—यहाँ जीवानन्द महाराज रहते हैं।

शान्ति—वे न हो और एक कमरा खोज लें।

गोव०—ऐसा भी कहीं होता है ? जो इस कमरे में रहते हैं, उन्हें मालिक भी कह लीजिए, जो कुछ करते हैं वही होता है।

शान्ति—अच्छा, तुम जाओ, मुझे जगह नहीं मिलेगी तो पेड़ के नीचे रहूँगा।

यह कहकर गोवर्द्धन को बिदाकर शान्ति उस कमरे के भीतर गई। भीतर

जाकर जीवानन्द का कृष्ण मृग-चर्म बिछाकर दीया। उज्ज्वल कर जीवानन्द की एक पोथी निकालकर पढ़ने लगी।

कुछ देर बाद जीवानन्द आकर हाज़िर हुए। शान्ति का पुरुष-वेश है, फिर भी उसे देखते ही पहचान गये, कहा—“यह क्या, शान्ति ?”

शान्ति धीरे धीरे किताब रखकर जीवानन्द के मुँह की तरफ़ देखकर बोली, “शान्ति कौन है, महाशय ?”

जीवानन्द अवाक् हो गये, अन्त में कहा,—“शान्ति कौन है, महाशय ? क्यों, तुम शान्ति नहीं हो ?”

शान्ति ने घृणापूर्वक कहा—“मैं नवीनानन्द गोस्वामी हूँ।” यह बात कहकर फिर वह किताब में झुकी।

जीवानन्द अट्हास हँसने लगे; कहा—“यह नया मज़ाक़ ज़रूर है। अच्छा तो फिर नवीनानन्द ! यहाँ क्या सोचकर आये हो ?”

शान्ति ने कहा—“भले आदमियों में यह रीति प्रचलित है कि पहली बातचीत के समय ‘आप’, ‘जनाब’ आदि सम्बोधन करते हैं। मैं भी आपके लिए असम्मानसूचक शब्द नहीं कह रहा—तो फिर क्यों आप मुझे ‘तुम, तुम’ कह रहे हैं ?”

“जी जनाब”, कहकर गले में वस्त्र डालकर हाथ जोड़कर जीवानन्द ने कहा—“इस समय विनीत भाव से भृत्य का निवेदन है, किस लिए भरुईपुर से इस दीन के कमरे में शुभागमन हुआ है, फ़र्माइए।”

बहुत गम्भीर भाव से शान्ति ने कहा—“व्यंग्य का भी प्रयोजन मैं नहीं देख रहा। भरुईपुर मैं नहीं पहचानता। मैं सन्तान-धर्म ग्रहण करने के लिए आकर आज दीक्षित हुआ हूँ।”

जी०—आह सर्वनाश ! सच है क्या ?

शा०—सर्वनाश क्यों ? आप भी तो दीक्षित है।

जी०—तुम औरत जो हो।

शा०—वह क्या ? ऐसी बात कहाँ मिली आपको ?

जी०—मेरा विश्वास था, मेरी ब्राह्मणी स्त्री-जाति की थी।

शा०—ब्राह्मणी ? है क्या ?

जी०—थी, ऐसा ही जानता हूँ।

शा०—आपका विश्वास है कि मैं आपकी ब्राह्मणी हूँ।

जीवानन्द ने फिर हाथ जोड़कर गले में वस्त्र डालकर बड़े विनीत भाव से कहा, “जी हाँ, जनाब।”

शा०—यदि ऐसा मज़ाक़ आपके मन में उठा हो तो आपका कर्तव्य क्या है, कहिए तो ?”

जी०—आपके बदन का कपड़ा ज़बरदस्ती उतारकर आपके होठों का अमृत पीना।

शा०—यह आपकी बहुत ही ख़राब नीयत है या गाँजे के बहुत बड़े चस्के का परिचय। आपने दीक्षा के वक्त शपथ की है कि किसी स्त्री के साथ एक आसन पर नहीं बैठेंगे। यदि आपको विश्वास हुआ है कि मैं स्त्री हूँ—ऐसा साँप में रस्सी का भ्रम बहुतों को होता है—तो आपके लिए उचित है कि अलग आसन पर आप बैठें। मेरे साथ आपकी बातचीत भी नहीं होनी चाहिए।

यह कहकर शान्ति ने फिर किताब में मन लगाया। परास्त होकर जीवानन्द ने दूसरी शय्या तैयार की, उस पर लेटे।



तृतीय खण्ड

पहला परिच्छेद

कल ईश्वर की कृपा से ७६ का साल समाप्त हुआ। बङ्गाल के छः आने आदमियों को—कितने करोड़ होते हैं कौन जाने—यमपुर भेजकर यह बुरा साल काल के ग्रास में पतित हुआ। ७७ के साल ईश्वर सुप्रसन्न हुए। अच्छी वर्षा हुई। पृथ्वी शस्यशालिनी हुई। जो बचे थे, उन्होंने पेट भरकर खाया। बिना खाये या कम खाये हुए जो लोग रोगी हो गये थे, एक साथ पूरा भोजन उन्हें सह्य नहीं हुआ। इसी से बहुतेरे मरे। पृथ्वी शस्यशालिनी तो हुई, लेकिन जन-शून्य हो गई। गाँवों में खाली मकान पशुओं के अड्डे या प्रेतों का कारण बन गये। गाँवों में उर्वरा भूमि के सैकड़ों टुकड़े बिना जोते परती रह गये या जङ्गलों से भर गये। तमाम देश जङ्गलों से पूर्ण हो गया। जहाँ हँसती हुई श्यामल शस्यराशि थी, जहाँ असंख्य गाय-भैंसें विचरण करती थीं, जिन बगीचों में ग्रामीण युवक-युवतियों का विहार होता था, वे सब क्रमशः गहनतर वन बनने लगे। एक साल, दो साल, क्रमशः तीन साल गये। जङ्गल बढ़ता गया। जो जगह मनुष्य के सुख की जगह थी, वहाँ नर-मांस के लोलुप बाघ आकर हिरन आदि पर भुपटने लगे। जहाँ सुन्दरियाँ पैरों में महावर लगाकर, नूपुर बजाती हुई, संगिनियों से व्यंग्य करती हुई, खिलखिला कर हँसती हुई जाती थीं, वहाँ रीछ विवर बनाकर अपने बच्चे पालने लगे। जहाँ लड़के नई उम्र में, शाम को मल्लिका के फूल जैसे खिले हुए, हृदय को तृप्ति देनेवाली हँसी हँसते थे, वहाँ आज दल के दल जङ्गली हाथी मदमत्त होकर पेड़ों के तने तोड़ने लगे। जहाँ नवदुर्गा की पूजा होती थी, वहाँ स्यारों की मर्दें बन गईं; भगवान् के

भूलेवाले मञ्च पर उल्लुओं के अड़्डे बन गये; नाद-मन्दिर में ज़हरीले साँप दिन के मेढकों की तलाश करने लगे। बङ्गाल में शस्य पैदा होता है, खानेवाले आदमी नहीं। बेचने का माल पैदा होता है, खरीदनेवाले आदमी नहीं। किसान खेती करते हैं, लेकिन रुपये नहीं पाते—ज़मींदार का लगान नहीं दे पाते। राजा ने ज़मींदारी छीन ली, इसलिए ज़मींदारों का दल सब कुछ खोकर गरीब होने लगा। वसुन्धरा ने बहुत अन्न दिया, फिर भी धन नहीं हो रहा, किसी के घर में धन नहीं। जो जो कुछ पाता है, छीन कर खाता है। चोर और डाकुओं ने सर उठाया, भले व्यक्तियों ने डरकर घरों में मुँह छिपाया।

इधर सन्तानों का सम्प्रदाय चन्दन और तुलसीदलों से विष्णु भगवान् के पाद-पद्म पूजता है, और जिसके घर में बन्दूक और पिस्तौल देखता है, छीन लाता है। भवानन्द ने कह दिया था, “भाई, अगर एक तरफ़ एक घर में हीरे, मणि और प्रवाल आदि देखो, और दूसरी तरफ़ एक टूटी बन्दूक देखो, तो हीरे, मणि और प्रवाल आदि छोड़कर टूटी बन्दूक ले आना।”

इसके बाद गाँव गाँव वे लोग चर भेजने लगे। चर गाँव में जाकर जहाँ हिन्दू देखते थे, कहते थे, “भाई, विष्णुपूजा करोगे?” यह कहकर २०-२५ आदमी इकट्ठे कर मुसलमानों के गाँव में दूटकर उनके घरों में आग लगा देते हैं, मुसलमान अपनी जान बचाने के लिए निकलते, भगते हैं, सन्तान उनका सर्वस्व लूटकर नये विष्णुभक्तों को देते हैं। लूट के हिस्से से ग्रामवासी, सन्तुष्ट होते हैं तो वे चर उन्हें विष्णु-मन्दिर में लाकर विग्रह के चरण छुलाकर उन्हें सन्तान बनाते हैं। लोगों ने देखा, सन्तानत्व में बड़ा फायदा है। विशेषतः मुसलमान-राज्य की अराजकता और बुरे शासन से सब मुसलमानों से नाराज़ थे। हिन्दूधर्म के विलोप से बहुत-से हिन्दू हिन्दुत्व की स्थापना के लिए आग्रहयुक्त थे। इसलिए दिन दिन सन्तानों

की संख्या वृद्धि पाने लगी। प्रतिदिन सैकड़ों, हर महीने हज़ारों सन्तान आ-आकर भवानन्द, जीवानन्द के पादपद्मों में प्रणाम कर, दलबद्ध होकर हर तरफ़ मुसलमानों के शासन के लिए निकलने लगे। जहाँ राजकर्मचारी देखते थे, पकड़कर पीटते थे, कभी-कभी जान लेते थे; जहाँ रूपया देखते थे, लूटकर घर ले आते थे; जहाँ मुसलमानों का गाँव देखते थे, जलाकर खाक कर देते थे। स्थानीय राजपुरुष सन्तानों के शासन के लिए अधिक से अधिक सेना भेजने लगे, परन्तु इस समय सन्तान दलबद्ध थे, शस्त्रयुक्त और अत्यन्त गर्वित। उनके दर्प के सामने मुसलमान-सेना नहीं बढ़ सकी। अगर बढ़ी तो अमित बल से सन्तान उन पर टूटकर उन्हें छिन्न-भिन्न करके हरिध्वनि करते रहते थे। यदि कभी किसी सन्तानों के दल को यवन-सैनिकों ने परास्त किया, तो तभी एक दल सन्तानों का कहीं से आकर विजेताओं के सर काटकर हरिध्वनि करते हुए चले जाते थे। इसी समय प्रथितनामा भारतीय आंगरेजों के प्रातःसूर्य वारेन हेस्टिङ्गस् साहब भारत के गवर्नर-जनरल थे। कलकत्ते में बैठे हुए लोहे की जंजीर बनवाकर उन्होंने मन में सोचा, इस जंजीर से मैं सद्दीपा, ससागरा भारतभूमि को बाँधूँगा। एक दिन जगदीश्वर ने सिंहासन पर बैठकर निःसन्देह कहा था, “तथाऽस्तु।” लेकिन वह दिन अभी दूर है। आज के दिन सन्तानों को प्रचण्ड हरिध्वनि से वारेन हेस्टिङ्गस् भी काँप उठे।

वारेन हेस्टिङ्गस् ने पहले फ़ौजदारी के सिपाहियों से विद्रोह रोकने की कोशिश की। लेकिन फ़ौजदारी के सिपाहियों की ऐसी हालत हुई थी कि वे किसी बुड्ढी औरत के मुँह से हरिध्वनि सुनकर भग खड़े होते थे। अस्तु कोई उपाय न देखकर वारेन हेस्टिङ्गस् ने कैप्टेन टामस नाम के एक सुदक्ष सैनिक के नायकत्व में कम्पनी की एक सेना विद्रोह रोकने के लिए भेजी।

कैप्टेन टामस पहुँचकर विद्रोह निवारण का बहुत अच्छा प्रयत्न करने लगे। राजा की सेना और ज़मींदारों की सेना मारगकर कम्पनी के सुशिक्षित

सशस्त्र बहुत ही बली देशी विदेशी सिपाहियों के साथ लिया। बाद को उस मिली सेना के कई दल किये और योग्य योद्धा के मातहत एक एक दल रखा। बाद को उन योद्धाओं को देश बांट दिया; कह दिया—“तुम अमुक प्रदेश में मल्लाह की तरह जाल से पानी छानते हुए—जैसे जाओगे; जहाँ विद्रोही देखना, चींटी की तरह उसकी जान निकाल लेना।” कम्पनी के सिपाहियों में कोई गाँजे की दम लगाकर, कोई रम पीकर बन्दूक में सज्जीन चढ़ाकर सन्तान-वध के लिए दौड़े। लेकिन सन्तान इस समय असंख्य थे, अजेय; कैप्टेन टामस की सेना किसानों के हँसिये से खेती जैसी, कटने लगी। ‘हरि हरि’ ध्वनि से कैप्टेन टामस के कान बहरे हो गये।



दूसरा परिच्छेद

तब कम्पनी की बहुत-सी रेशम की काठियाँ थीं। वैसी ही एक काठी शिवग्राम में थी। डनीवर्थ साहब उस काठी के फ़ैक्टर यानी अध्यक्ष थे। तब की काठियों की रक्षा के लिए सुव्यवस्था थी। डनीवर्थ इसी लिए किसी तरह जान बचा सके थे, परन्तु अपनी स्त्री-कन्याओं को कलकत्ता भेज देने के लिए मजबूर हुए थे और वे खुद सन्तानों से उत्पीड़ित हुए थे। इस प्रदेश में कैप्टेन टामस साहब दो-चार फ़ौजों के साथ तशरीफ़ ले आये। इस समय इतर जातियों के कमअक़, हाड़ी, डोम, बागदी, बूनो, सन्तानों का उत्साह देखकर धन लूटने का उद्ग्रीव हो रहे थे। उन लोगों ने कैप्टेन टामस की रसद पर आक्रमण किया। कैप्टेन टामस की सेना के लिए गाड़ियों में लदा हुआ उत्तम धी, मैदा, मुर्ग और चावल जा रहे थे—देखकर डोम-बागदियों का दल लोभ नहीं सँभाल सका। वे लोग गाड़ी पर दूटे, परन्तु कैप्टेन टामस के सिपाहियों की दो-चार बन्दूकों के कुन्दों की मार खाकर भग खड़े हुए। कैप्टेन टामस ने उसी वक्त कलकत्ता रपोर्ट भेजी कि आज एक सौ सत्तावन सिपाही लेकर चौदह हज़ार सात सौ विद्रोहियों का दमन किया गया। विद्रोहियों में दो हज़ार एक सौ तिरपन आदमी मरे हैं, एक हज़ार दो सौ तेइस घायल हुए हैं, सात आदमी कैद। सिर्फ़ आखिरी बात सही। कैप्टेन टामस, दूसरे ब्लेनहिम या रसबाक का युद्ध जीते, सोचकर मूछों पर ताव देते हुए निडर होकर इधर-उधर घूमने लगे और डनीवर्थ साहब को सलाह देने लगे कि, अब क्या है; अब विद्रोह ठंडा पड़ गया है, तुम अपनी स्त्री-कन्याओं को कलकत्ते से ले आओ। डनीवर्थ साहब ने कहा, “ठीक है; दस रोज़ आप यहाँ रहिए, देश कुछ और स्थिर हो, स्त्री और लड़कों को ले आऊँगा। डनीवर्थ साहब के यहाँ

पाले हुए सुर्गि और दुम्बे थे। पनीर भी उनके यहाँ बहुत अच्छी थी। बहुत तरहों की जङ्गली चिड़ियाँ उनके टेबिल की शोभा बढ़ाती थीं। दाढ़ीवाला बावर्ची जैसे दूसरी द्रौपदी था। अस्तु बिना ज़बान हिलाये कैप्टेन टामस वहाँ रहने लगे।

इधर भवानन्द आवेश में हैं, सोच रहे हैं, कब इस कप्तान टामस बहादुर का सर काटकर दूसरे संवसारि की उपाधि लूँगा। अँगरेज़ भारत के उद्धार के लिए आये थे, यह सन्तान तब तक नहीं समझे। किस तरह समझेंगे? कैप्टेन टामस और समसामयिक अँगरेज़ भी नहीं समझे। तब सिर्फ़ विधाता के मन में यह बात थी। भवानन्द सोच रहे थे, इन असुरों का वंश एक दिन में मारूँगा, सब एकत्र हों, कुछ असतर्क हों, इस समय हम लोग कुछ अलग रहें। अस्तु वे इस समय दूर दूर रहे॥ कैप्टेन टामस साहब ने निष्कण्टक होकर द्रौपदी के गुणग्रहण में चित्त लगाया यानी अच्छा खाने-पीने लगे।

साहब बहादुर को शिकार बहुत प्रिय था। कभी कभी शिवग्राम के पास-वाले जङ्गल में मृगया के लिए निकलते थे। एक दिन डनीवर्थ साहब के साथ घोड़े पर चढ़े हुए, कुछ शिकारियों को लेकर कैप्टेन टामस शिकार के लिए बाहर निकले। क्या कहें, टामस साहब हिम्मत में बेजोड़ थे, बल और वीरता में अँगरेज़ों में भी कोई मुक्ताबिल नहीं कर सकता था। वह घना जङ्गल बाघ, भालू और भैंसों से बड़ा भयानक था। बहुत दूर तक बढ़कर शिकारी और आगे चलने का अस्वीकृत हुए; कहा, “भीतर और रास्ता नहीं है, हम लोग आगे नहीं बढ़ सकेंगे।” डनीवर्थ साहब उस वन में ऐसे भयानक बाघ के सामने पड़े थे कि वे भी आगे बढ़ने का अनिच्छुक हुए। उन सबों ने लौटना चाहा। कैप्टेन टामस ने कहा, “तुम लोग लौटो, मैं नहीं लौटूँगा।” यह कहकर कैप्टेन साहब घने जङ्गल में पड़े।

दरअस्त जङ्गल में रास्ता नहीं था। घोड़ा भीतर नहीं जा सका। परन्तु साहब घोड़ा छोड़कर कन्धे पर बन्दूक लेकर अकेले अकेले अरण्य में पड़े।

पैठकर इधर-उधर खोजते हुए बाघ नहीं देखा। क्या देखा ? एक बड़े पेड़ के नीचे खिले फूलों के लता-गुल्मों से घिरकर कोई बैठा हुआ है। एक नवीन संन्यासी, रूप से वन को आलोकित कर रहा है। खिले फूल जैसे उस स्वर्गीय देह के संसर्ग से और भी खुशबूवाले हो रहे हैं। कैप्टेन साहब और भी विस्मित हुए, विस्मय के बाद ही उन्हें क्रोध आया। कैप्टेन साहब देशी भाषा विलक्षण जानते थे, पूछा,—“तुम कौन है ?”

संन्यासी ने कहा—“मैं संन्यासी हूँ।”

कैप्टेन ने कहा—“तुम rebel (बागी) है।”

संन्यासी—वह क्या ?

कैप्टेन—हम तुमको गोली मारंगा।

संन्यासी—मारो।

कैप्टेन मन में कुछ सन्देह कर रहे थे कि गोली मारेंगे या नहीं, ऐसे समय वह नवीन संन्यासी ने बिजली की तरह उन पर दूटकर उनके हाथ से बन्दूक छीन ली। फिर उसने अपने हृदय का चर्मावरण खोलकर फेंक दिया। खींच कर जटाएँ खोल दीं। कैप्टेन टामस साहब ने देखा, अपूर्व स्त्रीमूर्ति है। सुन्दरी हँसती हुई बोली, “साहब, मैं स्त्री हूँ ; किसी का चोट नहीं पहुँचाती। तुमसे एक बात पूछ रही हूँ, हिन्दू-मुसलमान जूझ रहे हैं, तुम लोग बीच में क्यों पड़ते हो ? अपने घर लौट जाओ।”

साहब—तुम कौन है ?

शान्ति—देख रहे हो, संन्यासिनी हूँ। जिनसे लड़ने आये हो, उनमें से किसी की स्त्री हूँ।

साहब—तुम हमारे घर में रहेगा ?

शान्ति—क्या ? तुम्हारी रखेली की तरह ?

साहब—इस्टरी की तरह रह सकता है, लेकिन शाडी नहीं होगा।

शान्ति—मुझे भी एक बात पूछनी है। हमारे घर में एक रूपी बन्दर

था। अब वह मर गया है। उसकी जगह खाली है। मैं तुम्हारी कमर में ज़ज़ीर बाँधूँगी, तुम उस जगह रहोगे ? हमारे बग़ीचे में बहुत अच्छे मर्तमान केले होते हैं।

साहब—तुम बरा spirited woman है। तुमारे courage से हम बहुत खुश है। तुम हमारे घर चलो। तुमारा पटि लराई में मरेगा। टब तुमारा क्या होगा ?

शान्ति—तो तुम्हारी हमारी एक बात तय रही ; लड़ाई तो दो-चार दिन बाद होगी ही। तुम अगर जीते तो मैं तुम्हारी रखेली होकर रहूँगी, मंज़ूर करती हूँ, अगर बची रही। और हम अगर जीते तो तुम हमारे यहाँ बन्दर बनकर केले खाओगे तो ?

साहब—केले खाने में अच्छा होता है ; अभी है ?

शान्ति—ले, अपनी बन्दूक ले। ऐसी ज़ज़ली जाति से भी कोई बातचीत करता है ?

शान्ति बन्दूक फेंककर हँसती हुई चली गई।

तीसरा परिच्छेद

शान्ति साहब को छोड़कर हिरनी की तरह क्षिप्र चरणों से वन में कहीं प्रविष्ट हो गई। साहब ने कुछ देर बाद सुना—स्त्रीकण्ठ से गाना हो रहा है—

“रोके कौन जवानी की लहरें ?

हरे मुरारे ! हरे मुरारे !”

फिर कहीं सरङ्गी में मधुर ध्वनि में वही बजा—

“रोके कौन जवानी की लहरें ?

हरे मुरारे ! हरे मुरारे !”

उसके साथ पुरुष का गला मिला गाना चलता रहा—

“रोके कौन जवानी की लहरें ?

हरे मुरारे ! हरे मुरारे !”

तीनों स्वर एक होकर वन की लताओं को कँपाने लगे। शान्ति गाती हुई चली—

“रोके कौन जवानी की लहरें ?

हरे मुरारे ! हरे मुरारे !

उठा समन्दर में तूफान,

मेरी नई नाव बहती है,

माझी ने पतवार पकड़ ली,

रहा न दुख का नामनिशान ;

हरे मुरारे ! हरे मुरारे !

बालू का तोड़ा है बाँध,

पूरी करते मन की साध,

ज्वार चढ़ा, रोकेगा कौन ?

हरे मुरारे ! हरे मुरारे !”

सरङ्गो में भी बज रहा था—

“ज्वार चढ़ा, रोकेगा कौन ?

हरे मुरारे ! हरे मुरारे !”

जहाँ बहुत ही घना वन है, भीतर क्या है बाहर से बिलकुल नहीं देख पड़ता, शान्ति उसी के भीतर पैठी। वहाँ शाखा-पल्लव-राशियों में छिपी हुई एक कुटी है। डाल ही उसके बँधने, पत्तों का छाजन, लकड़ी की फर्श, उस पर मिट्टी डाली हुई। उसी के भीतर लता का द्वार खोलकर शान्ति गई। वहाँ जीवानन्द बैठे हुए सरङ्गी बजा रहे थे।

जीवानन्द ने शान्ति को देखकर पूछा—“ज्वार चढ़ा, रोकेगा कौन, इसका क्या अर्थ ?”

शान्ति ने हँसकर जवाब दिया—“ज्वार का पानी कहीं नाले में और गड़ही में भी दौड़ता है ?”

जीवानन्द विषण्ण होकर बोले—“देखो शान्ति, एक दिन मेरा व्रत टूट चुका है, जिससे मेरे प्राण उत्सर्गीकृत हो चुके हैं। जो पाप है, उसका प्रायश्चित्त तो करना ही होगा। अब तक यह प्रायश्चित्त कर डालता, सिर्फ तुम्हारे अनुरोध से नहीं किया। परन्तु एक बड़ी लड़ाई की अब देर नहीं। उस लड़ाई के मैदान में मुझे उस पाप का प्रायश्चित्त करना होगा। इन प्राणों का परित्याग करना ही होगा। मेरे मरने के दिन—”

शान्ति और कहने न देकर बोली—“मैं तुम्हारी धर्मपत्नी हूँ, सहधर्मिणी, धर्म में सहायिका। तुमने बड़ा ही गम्भीर धर्म ग्रहण किया है। उस धर्म की मदद के लिए ही मैं घर छोड़कर आई हूँ और वन में रह रही हूँ। मैं तुम्हारा धर्म बढ़ाऊँगी। धर्मपत्नी होकर तुम्हारे धर्मों में विघ्न क्यों पैदा करूँगी ? विवाह इह काल के लिए है और विवाह पर काल के लिए है। इह काल के

लिए जो विवाह है, सोच लो, वह हम लोगों का नहीं हुआ। हमारा विवाह सिर्फ परकाल के लिए है। परकाल में दूना फल होगा। परन्तु प्रायश्चित्त की बात क्यों? तुमने कौन-सा पाप बिठा है? तुम्हारी प्रतिज्ञा है, किसी स्त्री के साथ एक आसन पर नहीं बैठोगे। कहाँ, किसी दिन तो एक आसन पर नहीं बैठे। प्रायश्चित्त क्यों? हाय स्वामिन्, तुम मेरे गुरु हो, मैं तुम्हें क्या धर्म सिखलाऊँगी? तुम वीर हो, तुम्हें वीरव्रत मैं सिखनाऊँगी?"

जीवानन्द आनन्द से गद्गद होकर बोले—“सिखलाया तो!” शान्ति प्रफुल्ल चित्त से कहने लगी, “और भी देखिए, गोस्वामीजी, इस लोक में भी क्या हमारा विवाह निष्फल है? तुम मुझे प्यार करते हो, मैं तुम्हें प्यार करती हूँ, इससे अधिक इस लोक में और कौन-सा फल है? कहो, वन्देमातरम्।”

तब दोनों ने एक साथ ‘वन्देमातरम्’ गाया।

— — —

चौथा परिच्छेद

एक दिन भवानन्द गोस्वामी नगर में पहुँचे। चौड़ा आम रास्ता छोड़ कर एक अँधेरी गली के भीतर गये। गली के दोनों तरफ ऊँची ऊँची इमारतें हैं। सुरज दोपहर का एक दफा गली के भीतर भाँकते हैं सिर्फ। इसके बाद अँधेरे का ही अधिकार रहता है। गली की बगल एक दोमंज़िले मकान में भवानन्द महाराज घुसे। नीचेवाले तले के एक कमरे में जहाँ अथेड़ एक औरत भोजन पका रही थी, वहीं चलकर भवानन्द महाप्रभु ने दर्शन दिये। औरत अथेड़ है, गदबदी और काली, उटङ्ग धोती पहने, माथे में गोदना, सर के बाल सामने की तरफ जूड़े के तौर पर बँधे, चावल की हण्डी में लकड़ी चलाने की ठनाठन ठनकार आ रही है, लटे हवा में फर-फर उड़ रही हैं, औरत आप ही आप बक-बक कर रही है। तरह-तरह से वह मुँह बना रही है और उसका जूड़ा बल खा रहा है। ऐसे समय भवानन्द महाप्रभु घर में पैठकर बोले, “महाराजिन दीदी, प्रातः प्रणाम।”

महाराजिन दीदी भवानन्द को देखकर व्यस्त होकर धोती सँभालने लगीं। सर का मोहक जूड़ा खोल डालने की इच्छा थी, लेकिन सुभीता नहीं हुआ, क्योंकि हाथ पके अन्न में लग चुके थे। भीगे चिकने वे बाल, हाय ! इस पर पूजा के समय एक फूल उन पर पड़ा था। धोती के आँचल से उन्होंने ढकने की कोशिश की, लेकिन आँचल ढकने का सत्तम नहीं हुआ, क्योंकि महाराजिन ने एक पाँच हाथ की धोती पहनी थी। वह पँचहत्थी धोती तोंद के घेरकर आते आते क़रीब-क़रीब ख़त्म हो चुकी थी। इस पर भारीपन के कारण न सहे जानेवाले हृदयमण्डल की भी बहुत कुछ इज्ज़त बचानी पड़ी थी। गले तक पहुँचकर धोती के आँचल ने जवाब दे दिया था। कान के ऊपर चढ़

कर कहा, अब आगे मेरी पहुँच नहीं। लाचार, परम लज्जावती गौरी महाराजिन ने धोती के आँचल को कानों के पास पकड़ रक्खा और भविष्य में आठ हाथ की धोती खरीदने की मन ही मन दृढ़ प्रतिज्ञा करके कहा, कौन ? गोसाईं जी ? “आओ, आओ ! मुझे फिर प्रातः प्रणाम क्यों भाई ?”

भवा०—तुम आजी जो हो।

गौरी—आदर देकर कहते हो, इसलिए तुम लोग गोसाईं, देवता हो। अच्छा, आदर दिया है। तो दे ही चुके हो, बचे रहो; दे तो दे भी सकते हो, हजार हो, मैं उम्र में बड़ी हूँ।

इस समय भवानन्द से गौरी देवी उम्र में पच्चीस साल बड़ी हैं; लेकिन चतुर भवानन्द ने जवाब दिया, “यह कैसी बात, आजी ? तुम सरस खो हो, इसलिए तुम्हें आजी* कहता हूँ। नहीं तो जब हिसाब हुआ था, तुम मुझसे छः साल की छोटी ठहरी थीं, याद नहीं ? हम वैष्णवों में सब तरह हो, जानती हो; मेरी मन में इच्छा है, मठाधोश ब्रह्मचारी से कहकर तुम्हें बैठा लूँ। यही बात कहने के लिए आया हूँ।

गौरी—यह कैसी बात ? छिः ! ऐसी बात भी कोई कहता है ?—हम लोग विधवा ठहरीं।

भवा०—तो बैठोगी नहीं ?

गौरी—अच्छा भई, जैसा जान पड़े, वैसा करो। तुम लोग पण्डित हो, हम विधवा स्त्रियाँ क्या समझें ? तो कब यह होगा ?

भवानन्द ने बड़ी मुश्किल से हँसी रोककर कहा, “उस ब्रह्मचारी से एक दफा मुलाक़ात भर हो। और वह कैसी है ?”

* बङ्गाल में आजी और नाती, आजा और नातिन में अश्लील मजाक प्रचलित था। देहात में अब भी है, परन्तु साहित्य से अब वह निकल गया है।

—अनुवादक

गौरी का चेहरा उतर गया। मन ही मन निश्चय किया, बैठानेवाली बात तो फिर मज़ाक़ है। कहा, “है और कैसी, जैसी रहती है ?”

भवा०—तुम जाकर एक बार देख आओ, कैसी है; मैं आया हूँ, एक दफ़ा मिलना चाहता हूँ।

गौरीदेवी तब भातवाली लकड़ी डालकर हाथ धोकर, ज़ीने की ऊँची-ऊँची सीढ़ियाँ तय करती हुई दोमञ्जिजे पर चढ़ने लगीं, एक कमरे में एक फटी चटाई पर एक अपूर्व सुन्दरी बैठी है। परन्तु सौन्दर्य पर एक घनी छाया पड़ी हुई है। दोपहर में, किनारों को छापनेवाली, विपुल जल से कल्लोल करती हुई स्वच्छ नदी के हृदय पर बहुत ही निविड़ मेघों की छाया की तरह कौन-सी एक छाया है। नदी के हृदय पर तरङ्गें टूट रही हैं, किनारे खिले पेड़-पौधे हवा में हिल रहे हैं, घने फूलों के भार से झुक रहे हैं, अट्टालिकाओं की क्रतारें भी शोभा पा रही हैं। नावों के खेये जाने से जल आन्दोलित हो रहा है। समय दोपहर का है, फिर भी उस घने बादलों की काली छाँह में सारी शोभा श्यामाभ है। यह भी वैसी ही। वही पहले की तरह चारु चिकने चञ्चल घने अलक, पहले की तरह के उस प्रशान्त भरे पूरे ललाट-पट पर पहले की तरह अतुल तूलिका से चित्रित भ्रूधनु, पहले की तरह चिरी सजल उज्ज्वल काली पुतलियोंवाली बड़ी बड़ी आँखें, उतनी कटाक्षमयी नहीं, उतनी लोल नहीं, कुछ नम्र। अधर पर वैसा ही रागरङ्ग, हृदय उसी तरह साँसों के साथ साथ। पूर्णता से चढ़ता उतरता हुआ, बाहें वैसी ही वनलताओं में न पाई जानेवाली कोमलता से भरी। परन्तु आज वह दीप्ति नहीं, वह उज्ज्वलता नहीं, वह प्रखरता नहीं, वह चञ्चलता नहीं, वह रस नहीं। क्या कहें, शायद वह यौवन नहीं। है सिर्फ सौन्दर्य और वह माधुर्य। नये नये हुआ है धैर्य—गाम्भीर्य। इन्हें पहले देखने पर मालूम होता, मनुष्य-लोक में ये बेजोड़ सुन्दरी हैं, अब देखने पर मालूम होता है, ये देवलोक में शापग्रस्ता देवी हैं। इनके इधर-उधर ज़र्द रंग के मोटे कागज़ की दो-तीन किताबें पड़ी हु

हैं। दीवार पर जपने की माला टँगी हुई है, और बीच बीच जगन्नाथ, बलराम, सुभद्रा के पट, कालिय-दमन, नवनारीकुञ्जर, वस्त्रहरण, गोवर्द्धन-धारण आदि वजलीला के चित्र खिँचे हैं। चित्रों के नीचे लिखा है, “चित्र हैं या विचित्र ?” इसी कमरे में भवानन्द पड़े।

भवानन्द ने पूछा, “क्यों कल्याणी, दैहिक कुशल तो है ?”

कल्याणी—क्या यह प्रश्न आप छोड़ेंगे नहीं ? मेरे दैहिक कुशल से आपका क्या बनता है और मेरा भी क्या बनता है ?

भवा०—जो पेड़ लगाता है, वह उसमें रोज़ पानी सींचता है। पेड़ बड़ा होने पर ही उसका सुख है। तुम्हारी मृत देह में मैंने जान डाली थी, वह बढ़ रही है या नहीं, क्यों नहीं पूछूँगा ?

क०—विषवृक्ष भी कुम्हलाता है ?

भवा०—जीवन क्या विष है ?

क०—नहीं तो मैंने अमृत डालकर उसे नष्ट क्यों करना चाहा ?

भवा०—कितने बार पूछूँगा, सोचा, हिम्मत करके पूछ नहीं सका। किसने तुम्हारे जीवन का विषमय किया था ?

कल्याणी ने स्थिर होकर उत्तर दिया, “किसी ने मेरे जीवन का विषमय नहीं किया—जीवन ही विषमय है। मेरा जीवन विषमय है, आपका जीवन विषमय है, सबका जीवन विषमय है।”

भवा०—सत्य है, कल्याणी, मेरा जीवन विषमय है। जिस दिन से— तुम्हारा व्याकरण समाप्त हो गया है।

क०—नहीं।

भवा०—अभिज्ञान ?

क०—अच्छा नहीं लगता।

भवा०—पढ़ने में कुछ आग्रह देखा था, इस समय यह अभ्रद्धा क्यों है ?

क०—आपकी तरह के पण्डित भी जब महा पापिष्ठ हैं, तब लिखना-पढ़ना न सीखना ही अच्छा है। मेरे पति का संवाद क्या है, प्रभो ?

भवा०—बार बार यह संवाद क्यों पूछती हो, वे तो तुम्हारे लिए मृत हैं।

क०—मैं उनके लिए मृत हूँ, वे मेरे लिए नहीं।

भवा०—वे तुम्हारे लिए मृतवत् होंगे, इसी लिए तो तुम मरीं, बार बार वह बात क्यों करती हो कल्याणी ?

क०—मरने पर भी क्या सम्बन्ध दूर होता है, वे कैसे हैं ?

भवा०—अच्छे हैं।

क०—कहाँ हैं ? पदचिह्न में ?

भवा०—वहीं हैं।

क०—कौन-सा काम कर रहे हैं ?

भवा०—जो काम कर रहे थे, दुर्ग-निर्माण, अस्त्र-निर्माण। उन्हीं के बन-वाये अस्त्रों से सहस्र सहस्र सन्तान सज्जित हो रहे हैं। उनके कल्याण से तोप, बन्दूक, गोली, गोला और बारूद की अब हमें कमी नहीं रही। सन्तानों में वही श्रेष्ठ हैं। हमारा बहुत बड़ा उपकार कर रहे हैं, वे हमारे दाहने हाथ हैं।

क०—मैंने प्राण न दिये होते तो क्या इतना होता ? जिसके हृदय में कीच भरा घड़ा बँधा है, वह क्या संसार-सागर में तैर सकता है ? जिसके पैरों लोहे की ज़जोर पड़ी है, वह क्या दौड़ता है ? संन्यासी, तुमने इन तुच्छ प्राणों को क्यों बचाया ?

भवा०—स्त्री सहधर्मिणी है, धर्म की सहायक है।

क०—छोटे छोटे धर्म में। बड़े बड़े धर्म में कण्टक है। मैंने ज़हर के काँटे से उनके अधर्म का काँटा निकाल दिया था। छिः दुश्चारी पामर ब्रह्मचारी ! इन प्राणों को तुमने लौटाल क्यों दिया ?

भवा०—अच्छा, जो कुछ दिया है, वह न हो मेरा ही रहा। जो प्राण तुम्हें मैंने दिये हैं, वे क्या तुम मुझे दे सकती हो ?

क०—आपको क्या कोई खबर है ? मेरी सुकुमारी कैसी है ?

भवा०—बहुत दिनों से यह खबर नहीं मिली। जीवनानन्द बहुत दिनों से उधर नहीं गये।

क०—वह संवाद क्या मुझे आप ला नहीं दे सकते ? पति ही मेरे त्याज्य हैं, अगर बची तो कन्या क्यों छोड़ूँगी ? इस समय सुकुमारी को पाने पर इस जीवन में कुछ सुख आ सकता है। लेकिन मेरे लिए आप क्यों इतना करेंगे ?

भवा०—करूँगा, कल्याणी ! तुम्हारी कन्या को ला दूँगा, परन्तु इसके बाद ?

क०—इसके बाद क्या है महाराज ?

भवा०—पति ?

क०—उन्हें इच्छा से छोड़ा है।

भवा०—यदि उनका व्रत सम्पूर्ण हो ?

क०—तो उन्हीं की हूँगी; मैं बची हूँ, क्या वे जानते हैं ?

भवा०—नहीं।

क०—आपके साथ क्या उनकी मुलाकात नहीं होती ?

भवा०—होती है।

क०—मेरी बात क्या वे कुछ नहीं कहते ?

भवा०—नहीं, जो स्त्री मर गई है, उसके साथ पति का और सम्बन्ध क्या है ?

क०—क्या कह रहे हैं आप ?

भवा०—तुम फिर व्याह कर सकती हो, तुम्हारा पुनर्जन्म हुआ है।

क०—मेरी लड़की ला दे।

भवा०—ला दूँगा, तुम फिर व्याह कर सकती हो ?

क०—क्या तुम्हारे साथ ?

भवा०—ब्याह करोगी ?

क०—क्या तुम्हारे साथ ?

भवा०—अगर यही हो ?

क०—तुम्हारा सन्तान-धर्म कहाँ रहेगा ?

भवा०—अतल जल में ।

क०—पर काल ?

भवा०—अतल जल में ।

क०—यह महाव्रत ?

भवा०—अतल जल में ।

क०—किस लिए सब अतल जल में डुबाओगे ?

भवा०—तुम्हारे लिए । देखो, मनुष्य हो, ऋषि हो, सिद्ध हो, देवता हो, चित्त अवश है । सन्तान-धर्म मेरा प्राण है, परन्तु आज पहले-पहल कहता हूँ, तुम्हीं मेरी प्राणाधिक प्राण हो ? जिस दिन तुम्हें प्राण-दान दिया था, उसी दिन से मैं तुम्हारे पैरों तले बिका हुआ हूँ । मैं नहीं जानता था कि संसार में यह रूपराशि है । ऐसी रूपराशि मैं कभी आँखों से देखूँगा, यह मालूम रहने पर मैं सन्तान-धर्म ग्रहण न करता । यह धर्म इस आग में जल कर राख हो जाता है । धर्म जल गया है, प्राण हैं । आज चार साल से प्राण भी जल रहे हैं, अब नहीं रहना चाहते । दाह ! कल्याणी ! दाह ! ज्वाला ! परन्तु जो ईंधन जलेगा, वह नहीं रहा । प्राण निकलने का हैं । चार साल मैंने सहा है, अब नहीं सह सकता । तुम मेरी होगी ?

क०—तुम्हारे ही मुख से सुना है कि सन्तान-धर्म का एक नियम यह है कि जो इन्द्रिय के वश होता है, उसका प्रायश्चित्त मृत्यु है । यह बात क्या सच है ?

भवा०—यह बात सच है ।

क०—तो तुम्हारा प्रायश्चित्त मृत्यु है ?

भवा०—मेरा एकमात्र प्रायश्चित्त मृत्यु है ।

क०—मैं तुम्हारी इच्छा पूरी करूँ तो तुम मरोगे ?

भवा०—ज़रूर मरूँगा ।

क०—और अगर इच्छा पूरी न करूँ ?

भवा०—फिर भी मृत्यु मेरा प्रायश्चित्त है, क्योंकि मेरा चित्त इन्द्रिय के वश हुआ है ।

क०—मैं तुम्हारी इच्छा पूरी नहीं करूँगी । तुम कब मरोगे ?

भवा०—अगली लड़ाई में ।

क०—तो तुम जाओ । मेरी लड़की को क्या भेज दोगे ?

भवानन्द की आँखों में आँसू आ गये, कहा, “दूँगा । मैं मर जाऊँ तो क्या तुम्हें मेरी याद रहेगी ?”

कल्याणी ने कहा, “रहेगी; व्रत छोड़नेवाले अधर्मी के रूप से ।”

भवानन्द चले । कल्याणी किताब पढ़ने लगी ।



पाँचवाँ परिच्छेद

भवानन्द सोचते हुए मठ चले। चलते-चलते रात हो गई। रास्ते में अकेले जा रहे थे। वन में अकेले फँसे। देखा वन में एक और आदमी उनके आगे आगे जा रहा है। भवानन्द ने पूछा, “कौन जा रहे हो?”

आगे चलनेवाले व्यक्ति ने कहा, “पूछना आता है, तभी जबाब देता हूँ—मैं राही हूँ।”

भवा०—“वन्दे।”

आगे चलनेवाले व्यक्ति ने कहा, “मातरम्।”

भवा०—मैं भवानन्द गोस्वामी हूँ।

अग्रगामी—मैं धीरानन्द हूँ।

भवा०—धीरानन्द, कहाँ गये थे?

धीरा०—आपकी ही खोज में।

भवा०—क्यों?

धीरा०—एक बात कहने के लिए।

भवा०—कौन-सी बात?

धीरा०—एकान्त में कहनेवाली है।

भवा०—यहीं कहो न, यह बहुत ही एकान्त जगह है।

धीरा०—आप नगर गये थे?

भवा०—हाँ।

धीरा०—गौरीदेवी के घर?

भवा०—तुम भी नगर गये थे क्या?

धीरा०—वहाँ एक परम सुन्दरी युवती रहती है?

भवानन्द कुछ विस्मित हुए, कुछ डरे। कहा, “ये सब कैसी बातें ?”

धीरा०—आपने उससे मुलाक़ात की थी।

भवा०—इसके बाद ?

धीरा०—आप उस कामिनी को बहुत चाहते हैं।

भवा०—(कुछ सोचकर) धीरानन्द, क्यों इतनी खोज ली ? देखो, धीरानन्द, तुम जो कुछ कह रहे हो, वह सब सत्य है। तुम्हारे अलावा और कितने आदमी यह बात जानते हैं ?

धीरा०—और कोई नहीं।

भवा०—तो तुम्हारा वध करने पर ही मैं कलङ्क से मुक्त हो सकता हूँ।

धीरा०—हो सकते हो।

भवा०—आओ, तो इस एकान्त स्थान में दोनों निपट लें। या तो तुम्हें मारकर मैं निष्कण्ठक होऊँ या तुम मुझे मारकर मेरी कुल जलन मिटा दो। हथियार है ?

धीरा०—है, खाली हाथ किसमें हिम्मत है तुमसे ये बातें करे ? लड़ना ही अगर तुम्हारा मत है, तो अवश्य लड़ूँगा। सन्तान-सन्तान में विरोध मना है, परन्तु आत्मरक्षा के लिए किसी से भी विरोध मना नहीं। जो कहने के लिए मैं तुम्हें खोज रहा था, वह सब सुन लेने पर क्या लड़ना अच्छा नहीं होगा ?

भवा०—बुरा नहीं; कहो।

भवानन्द ने तलवार निकालकर धीरानन्द के कन्धे पर रखी, ताकि धीरानन्द भगे नहीं।

धीरा०—मैं यही कह रहा था कि तुम कल्याणी से ब्याह करो।

भवा०—कल्याणी, यह भी जानते हो ?

धीरा०—ब्याह क्यों नहीं करते हो ?

भवा०—उसके पति हैं जो।

धीरा०—वैष्णव का ऐसा ब्याह होता है।

भवा०—वह मुण्डे बैरागियों का, सन्तानों का विवाह है ही नहीं।

धीरा०—सन्तान-धर्म क्या छोड़ा जाने योग्य है? लेकिन तुम्हारे तो प्राण निकल रहे हैं। छि: छि: ! मेरा तो कन्धा कट गया। (सचमुच धीरानन्द के कन्धे से खून गिर रहा था।)

भवा०—तुम किस मतलब से मुझे अधर्म में प्रेरित कर रहे हो? ज़रूर तुम्हाग कोई स्वार्थ है।

धीरा०—यह कहने की भी इच्छा है। तलवार न गड़ाना, कह रहा हूँ। इस सन्तान-धर्म में मेरे हाड़ चूरचूर हो गये हैं; मैं इसे छोड़कर स्त्री-सन्तानों का मुँह देखकर दिन पार करने के लिए बहुत ब्याकुल हुआ हूँ। मैं यह सन्तानधर्म छोड़ूँगा। परन्तु मेरे लिए घर जाकर बैठने की गुआइश है? विद्रोही के रूप से मुझे बहुत लोग पहचानते हैं; घर जाकर बैठूँगा तो या तो सरकारी अफसर सर काटकर ले जायँगे, या सन्तान ही विश्वासघातक समझकर मारकर चले जायँगे। इसी लिए तुम्हें अपने रास्ते ले जाना चाहता हूँ।

भवा०—क्यों, मुझे, क्यों?

धीरा०—वही असली बात है। ये सन्तान तुम्हारे आज्ञाधीन हैं—सत्यानन्द इस समय यहाँ नहीं हैं, तुम इनके नायक हो। तुम यह सेना लेकर लड़े, तुम्हारी जय होगी, मेरा ऐसा दृढ़ विश्वास है। युद्ध जीतने पर तुम अपने नाम स राज्‍य की स्थापना क्यों न करो, सेना तो तुम्हारी आज्ञा-कारिणी है। तुम राजा हो, कल्याणी तुम्हारी मन्दोदरी हो, मैं तुम्हारा अनुचर होकर स्त्री-पुत्रों का मुँह देखकर दिन पार करूँ और आशीर्वाद दूँ। सन्तान-धर्म अतल जल में डुबा दो।

भवानन्द ने धीरे धीरे धीरानन्द के कन्धे से तलवार हटाई। कहा, “धीरानन्द, लड़े, मैं तुम्हें मारूँगा। मैं इन्द्रिय के बश हुआ हूँगा, लेकिन

विश्वास तोड़नेवाला नहीं। तुमने मुझे विश्वासघातक होने का परामर्श दिया है, खुद भी विश्वासघातक हो; तुम्हें मार देने पर ब्रह्महत्या नहीं होती। मैं तुम्हारी जान लूँगा।” धीरानन्द बात समाप्त होते न होते साँस खींचकर भगा। भवानन्द उसके पीछे नहीं लगे। भवानन्द कुछ देर दूसरी चिन्ता में रहे; जब उसे खोजा तब नहीं पाया।

छटा परिच्छेद

मठ पहुँचकर भवानन्द घने वन में पेठे। उस वन में एक जगह एक पुरानी अट्टालिका का भग्नावशेष है। भग्नावशेष की ईंटों पर लता-गुल्म और काँटे-दार झाड़ियाँ बहुतायत से पैदा हुई हैं और बहुत घनी हैं। वहाँ असंख्यों साँप रहते हैं। दूटे कमरों में एक कमरा कुछ कम दूटा और साफ़ था, भवानन्द चलकर उसके ऊपर बैठे। बैठकर सोचने लगे।

रात गहरी आँधेरी। इस पर वह वन बहुत ही चौड़ा; आदमी का नामो-निशान नहीं; बहुत ही घना, पेड़ों और लताओं से दुर्भेद्य; जङ्गली जानवरों के भी आने-जाने का विरोधी। विशाल, जनशून्य, अन्धकार, दुर्भेद्य, नीरव! रव में दूर बाघ की दहाड़ अथवा अन्य वन्य जन्तु का, भूख, डर या प्रचार का शब्द। कदाचित् किसी बड़े पक्षी के पङ्क फड़फड़ाने का शब्द, कदाचित् खेदे हुए और खेदनेवाले, वध्य और वधकारी पशुओं का द्रुत-गमन-शब्द। उस एकान्त आँधेरे में दूटी अट्टालिका पर बैठे हुए अकेले भवानन्द। उनके लिए उस समय जैसे पृथ्वी नहीं है, अथवा केवल उपादानमयी होकर हो। उस समय भवानन्द सिर पर हाथ रखे, सोच रहे थे; हिल नहीं रहे थे; साँस नहीं चल रही थी; डर नहीं था; बड़ी गहरी चिन्ता में मग्न थे। मन ही मन कह रहे थे, “जो भवितव्य है, वह अवश्य होगा। मैं भागीरथी की तरङ्गों में छुद्र गज की तरह इन्द्रिय के बहाव में बह गया, यही मुझे दुःख है। क्षणमात्र में देह नष्ट हो सकती है—देह के नाश के साथ इन्द्रिय का भी नाश है—मैं उसी इन्द्रिय के वश हुआ ? मेरे लिए मौत अच्छी है। धर्मत्यागी ! छिः मरूँगा !” ऐसे समय उल्लू ने सर पर गम्भीर छ्वनि की। भवानन्द तब मुक्तकण्ठ से कहने लगे—“वह कैसा शब्द ? कानों में ऐसा पहुँचा, जैसे यम मुझे बुला

रहे हैं। मैं नहीं जानता, किसने आवाज़ की, किसने मुझे पुकारा, किसने मुझे विधि बताई, किसने मरने के लिए कहा। हे पुण्यमयि अनन्ते ! तुम शब्दमयी हो, परन्तु तुम्हारे शब्द का मर्म तो मैं नहीं समझ रहा। मेरी धर्म में मति लगाओ, मुझे पाप से विरत करो। धर्म में, हे गुरुदेव, धर्म में जैसे मेरी मति रहे।”

तब उस भीषण वन के भीतर से बहुत ही मधुर, फिर भी गम्भीर, मर्म-भेदी मनुष्यकण्ठ सुन पड़ा; किसी ने कहा, “धर्म में तुम्हारी मति रहेगी, मैंने आशीर्वाद दिया।”

भवानन्द का शरीर रोमान्चित हुआ। यह क्या ? यह तो गुरुदेव का कण्ठ है। “महाराज, कहाँ हैं आप ? इस समय दास को दर्शन दीजिए।”

परन्तु किसी ने दर्शन नहीं दिया—किसी ने उत्तर नहीं दिया। भवानन्द ने बार बार पुकारा, परन्तु उत्तर नहीं मिला। इधर-उधर खोजा, कहीं कोई नहीं था।

जब रात बीती, सुबह का सूरज बड़े वन की पत्तोंवाली साँवली चोटी पर किरणें फैलाने लगा, तब भवानन्द मठ में आकर हाज़िर हुए। कानों में पैठा—“हरे मुरारे ! हरे मुरारे !” पहचाना, सत्यानन्द का कण्ठ है। समझे, प्रभु लौट आये हैं।

सातवाँ परिच्छेद

जीवानन्द के कुटी से बाहर निकल जाने पर, शान्तिदेवी फिर सरङ्गी लेकर मधुर मधुर सङ्गीत छेड़ने लगी;—

“प्रलय-पयोधि-जले धृतवानसि वेदं
विहित-विचित्र-चरित्रमखेदम्,
केशव, धृत-मीनशरीर,
जय जगदीश हरे !”

गोस्वामी का रचा हुआ मधुर स्तोत्र जब शान्ति देवी के कण्ठ से निकल-कर, राग, ताल और लय से पूर्ण होकर, उस अनन्त वन की अनन्त नीरवता को चीरता हुआ, पूरे जलोच्छ्वास के समय वसन्त की हवा से ताड़ित तरङ्ग-भङ्ग की तरह मधुर हो आया, तब उन्होंने गाया;—

“निन्दसि यज्ञविधेरहह श्रुतिज्ञातं
सद्य-हृदय-दर्शित-पशुघातम्,
केशव, धृत-बुद्धशरीर,
जय जगदीश हरे !”

तब बाहर से किसी ने बड़े गम्भीर स्वर से गाया, गम्भीर मेघगर्जन-जैसी तान से गाया;—

“भ्लेच्छनिवह-निघने कलयसि कशवालं
धूमकेतुमिव किमपि करालम्,
केशव, धृत-कल्किशरीर,
जय जगदीश हरे !”

शान्ति ने भक्तिभाव से प्रणत होकर सत्यानन्द की पदधूलि ली; कहा,
“प्रभो, मैंने ऐसा कौनसा भाग्य पाया है कि आपके श्रीपदपद्मों के यहाँ दर्शन

पाऊँ—आज्ञा दीजिए, मुझे क्या करना होगा ?” कहकर सरङ्गी में स्वर भरकर फिर गाया,—

“तव चरणप्रणता वयमिति भावय कुरु कुशलं प्रणतेषु ।”

सत्यानन्द ने कहा, “मा, तुम्हारा कुशल ही होगा ।”

शान्ति—विस तरह, महाराज ? तुम्हारी तो आज्ञा है—मेरा वैधव्य !

सत्या०—तुम्हें मैं पहचानता नहीं था । मा, रस्सी की ताकत समझे बिना मैंने उसे ज्यादा खींचा है, तुम मुझसे भी जानी हो, इसका उपाय तुम करो, जीवानन्द से यह न कहना कि मैं सब जानता हूँ । तुम्हारे प्रलोभन से वे प्राण बचा सकते हैं, अब तक बचाये हुए हैं, इस तरह मेरा काम बन सकता है ।

उन बड़ी बड़ी खिली नीली आँखों में गरमी के मेघ में रही बिजली-जैसे कड़े कटाव हुए । शान्ति ने कहा, “क्यों महाराज, मैं और मेरे पति एक आत्मा हैं; तुमसे जो जो बातचीत हुई, सब कहूँगी । मरना होगा, वे मरेंगे; मेरी क्या हानि ? मैं तो साथ-ही-साथ मरूँगी । उनका स्वर्ग है, क्या सोचते हो—मेरा स्वर्ग नहीं ?”

ब्रह्मचारी ने कहा, “मैं कभी हारा नहीं, आज तुम्हारे पास हारा । मा, मैं तुम्हारा पुत्र हूँ; पुत्र पर स्नेह करो, जीवानन्द के प्राण बचाओ, अपने प्राण बचाओ, मेरा काम बन जायगा ।”

बिजली हँसी । शान्ति ने कहा, “मेरे पति का धर्म मेरे पति के हाथ में है । मैं उन्हें धर्म से विरत करनेवाली कौन हूँ ? पति स्त्री का इसी लोक में देवता है, परलोक में सबका देवता धर्म है । मेरे पास मेरे पति बड़े हैं, उनसे बड़ा मेरा धर्म है, इसकी अपेक्षा मेरे पास मेरे पति का धर्म बड़ा है । अपने धर्म को, मेरी जिस दिन इच्छा होगी, तिलाञ्जलि दे सकती हूँ; परन्तु अपने पति के धर्म में भी तिलाञ्जलि दूँ ? महाराज ! तुम्हारी बात पर मेरे पति को मरना होगा, मरेंगे; मैं रोऊँगी नहीं ।”

ब्रह्मचारी तब लम्बी साँस छोड़कर बोले, “मा, इस महान् व्रत में बलि-दान है। हम सभी को अपनी बलि देनी होगी। मैं मरूँगा, जीवानन्द, भवानन्द सभी मरेंगे, शायद मा, तुम भी मरोगी; परन्तु देखो, काम करके मरना होगा, बिना काम किये क्या मरना अच्छा है?—मैंने केवल देश को मा कहा है, और किसी को मा नहीं कहा; क्योंकि सुजला सुफला धरणी को छोड़कर हम और मा नहीं मानते। और तुम्हें मा कहा। तुम मा होकर सन्तानों का काम करो; जिससे काम बने, वह करना, जीवानन्द के प्राण बचाना, अपने प्राण रखना।”

यह कहकर सत्यानन्द “हरे मुरारे मधुकैटभारे” गाते हुए चले गये।

— — —

आठवाँ परिच्छेद

क्रमशः सन्तानों में यह ख़बर फैल गई कि सत्यानन्द आये हैं, सन्तानों से कुछ बातचीत करेंगे, इसलिए उन्होंने सबको बुलाया है। तब दलों में सन्तान आ आकर इकट्ठे होने लगे। चाँदनी रात में, नदी के किनारे, एक बड़े जङ्गल में, आम, कटहल, ताड़, इमली, पीपल, बेल, बरगद और सेमर आदि पेड़ों से शोभित गहन वन में दस हज़ार सन्तान एकत्र हुए। सब लोग एक दूसरे के मुँह से सत्यानन्द के आने की बात सुनकर महा कोलाहल करने लगे। सत्यानन्द किस लिए कहाँ गये थे, यह साधारण जनों का मालूम नहीं था। ख़बर यह थी कि वे सन्तानों के कल्याण के लिए हिमालय तपस्या करने गये थे।

आज सब लोग कानों में बतलाने लगे, “महाराज की तपस्या में सिद्धि हुई है, हम लोगों का राज्य होगा।” तब बड़ा कोलाहल उठने लगा, कोई कोई ऊँची आवाज़ लगाकर कहने लगे, “मार मार, नेड़े* मार।” किसी-किसी ने कहा, “जय, जय, महाराज की जय!” किसी-किसी ने गाया, “हरे मुरारे मधुकैटभारे!” किसी-किसी ने गाया, “वन्दे मातरम्!” किसी ने कहा “भाई, ऐसा भी दिन होगा कि तुच्छ बङ्गाली होकर मैदानेजङ्ग में हम जान देंगे?” किसी ने कहा, “भाई, ऐसा भी दिन होगा कि मसजिदें तोड़कर हम राधामाधव के मन्दिर बनवायेंगे?” किसी ने कहा, “भाई, ऐसा दिन क्या आयेगा कि अपना धन हम आप खायेंगे?” दस हज़ार आदमियों के गले का कलकल-रव, मधुर हवा से ताड़ित पल्लव-

* नेड़े यानी मुण्डित; बङ्गाल में मुसलमानों के लिए बङ्गाली इस शब्द का प्रयोग करते हैं, मुसलमानों-द्वारा प्रयुक्त हिन्दू की जैसी ‘हेय’ अर्थ-ध्वनि में।

राशियों का मर्मर, बालू के ऊपर बहनेवाली नदी का मधुर तर-तर ख, नीले आकाश के चाँद तारे—सफ़ेद बादल, साँवली पृथ्वी के हरे-भरे वन, स्वच्छ नदी, श्वेत सैकत, खिले फूल; और बीच बीच वह सब आदमियों के मन में बसनेवाला “वन्दे मातरम् !” सत्यानन्द उस एकत्र हुई जन-मण्डली के बीच में आकर खड़े हुए। तब वे दस हजार सन्तानों के मस्तक पेड़ों के छेदों से आती चाँद की किरणों में चमकते हुए साँवली तृणभूमि में प्रणत हुए। बहुत ही ऊँचे स्वर से, दोनों बाहें उठाकर सत्यानन्द ने कहा, “शङ्ख-चक्र गदा-पद्मधारी, वनमाली, वैकुण्ठनाथ जो केशिमंथन हैं, मधु-मुर-नरकमर्दन, लोकपालन, वे तुम्हारा मञ्जल करें, वे तुम्हारी बाहों में बल दें, मन में भक्ति दें, धर्म में मति दें, तुम लोग एक बार उनकी महिमा गाओ।” तब हजारों कण्ठों से ऊँचे स्वर से गाया जाने लगा—

“जय जगदीश हरे !

प्रलय-पयोधि-जले धृतवानसि वेदं

विहित-विचित्र-चरित्रमखेदम्,

केशव, धृत-मीनशरीर,

जय जगदीश हरे !”

सत्यानन्द उन्हें फिर आशीर्वाद देकर बोले, “हे सन्तानो, तुम्हारे साथ आज मेरी विशेष बात है। टामस नाम के एक विध्वर्मी दुरात्मा ने बहुत-से सन्तानों के प्राण लिये हैं। आज रात को हम लोग उसे, उसकी सेना के साथ, यमपुरी भेजेंगे। ईश्वर की आज्ञा है—तुम लोग क्या कहते हो ?”

भीषण हरिश्चनि से कानन विदीर्ण हो गया। “अभी मारेंगे, कहाँ हैं वे लोग, चलो दिखा दो।” “मार, मार ! शत्रु को मार !” आदि आदि शब्द दूर की पहाड़ी से टकराये। तब सत्यानन्द ने कहा, “इसके लिए हम लोगों का कुछ धैर्य रखना पड़ेगा। शत्रु के तोपें हैं—तोपों के बिना

उनसे लड़ाई सम्भव नहीं। खास तौर से वे वीर-जाति हैं। पदचिह्न के दुर्ग से १७ तोपें आ रही हैं—तोपें पहुँच जाने पर हम लोग लड़ाई के लिए चलेंगे। वह देखो, सुबह हो रही है। दिन चार दण्ड चढ़ते ही—वह क्या है—”

“धड़ाम—धड़ाम” अकस्मात् विशाल वन के चारों तरफ तोपों की आवाज़ होने लगी। तोपें अँगरेजों की। जाल में पड़ी मछलियों की तरह सन्तानों को इस आम के वन में घेरकर कैप्टेन टामस ने भून डालने का उद्योग किया है।

—

नवाँ परिच्छेद

“धड़ाम् धड़ाम्” अँगरेज़ों की तोपों की आवाज़ हुई। वह आवाज़ विशाल वन को कम्पित कर प्रतिध्वनित हुई “धड़ाम् धड़ाम्।” नदी के बाँधों पर चक्कर काटती हुई वह ध्वनि दूर के आकाश-प्रान्त से टकराई “धड़ाम् धड़ाम्।” सत्यानन्द ने आज्ञा दी, “तुम लोग देखो, कैसी तोपें हैं।” कुछ सन्तान उसी वक्त घोड़ों पर सवार होकर देखने दौड़े; परन्तु वन से निकल कर कुछ दूर जाते ही सावन की धारा की तरह उन पर गोले गिरने लगे। घोड़ों के साथ उन सबों ने घायल होकर जान गँवाई। दूर से सत्यानन्द ने देखा। कहा, “ऊँचे पेड़ पर चढ़कर देखो, क्या है।” उनके कहने के पहले ही जीवानन्द पेड़ पर चढ़कर प्रभात की किरणों में देख रहे थे। पेड़ की ऊपरवाली शाखा से पुकार कर उन्होंने कहा, “तोप अँगरेज़ों की हैं।” सत्यानन्द ने पूछा, “अश्वारोही हैं या पैदल ?”

जीवा०—दोनों हैं।

सत्या०—कितने ?

जीवा०—अन्दाज़ा नहीं लगा पा रहा। अब भी वन की आड़ से निकल रहे हैं।

सत्या०—गोरे हैं या केवल सिपाही ?

जीवा०—गोरे हैं।

तब सत्यानन्द ने जीवानन्द से कहा, “तुम पेड़ से उतरो।”

जीवानन्द पेड़ से उतरे।

सत्यानन्द ने कहा, “दस हज़ार सन्तान मौजूद हैं; क्या कर सकते हो, देखो। आज तुम सेनापति हो।” जीवानन्द अस्त्रों से सुसज्जित होकर छलाँग

मारकर धोड़े की पीठ पर गये। एक दफ़ा नवीनानन्द गोस्वामी की तरफ़ निगाह कर इशारे से क्या कहा, कोई समझ नहीं पाया। नवीनानन्द ने आँख के इशारे से क्या जवाब दिया, वह भी कोई नहीं समझा; सिर्फ़ वही दोनों अपने अपने मन में समझे कि शायद इस जन्म के लिए बिदा है। फिर नवीनानन्द ने दाहिनी भुजा उठाकर सबसे कहा, “भाई, इस समय गाओ, जय जगदीश हरे !” तब वे दस हजार सन्तान समस्वर से नदी, वन और आकाश को प्रतिध्वनित कर, तोपों की गरज को डुबाकर, हजारों बाहें उठाकर गाने लगे—

“जय जगदीश हरे !

म्लेच्छनिग्रह-निधने कलयसि करवालम् ।”

इसी समय आँगरेजों के गोले आकर वन में सन्तान-सम्प्रदाय पर पड़ने लगे। गाते गाते किसी का सर उड़ गया, किसी का हाथ गायब हो गया, किसी की छाती के फूफ़स निकल गये, वह वहीं ढेर हो गया, फिर भी किसी ने गाना बन्द नहीं किया। सब गाते गये—“जय जगदीश हरे !”

गीत समाप्त होने पर एक दफ़ा सब स्तब्ध हो गये। वह घना वन, वह नदी का रेत, वह अनन्त एकान्त एक साथ गहरी चुप में घनीभूत हो गया, केवल वह भयङ्कर तोपों की ध्वनि होती रही और दूर से सुन पड़ने-वाली गोरों के एकत्र किये अस्त्रों की झनकार और पैरों की आहट।

तब सत्यानन्द ने उस गहरी निस्तब्धता में बहुत ही ऊँचे स्वर से कहा, “जगदीश ने तुम पर कृपा की ; तोपें कितनी दूर हैं ?” ऊपर से एक आदमी ने कहा, “इस वन के बहुत पास, सिर्फ़ एक छोटे मैदान के उस पार।”

सत्यानन्द ने पूछा, “तुम कौन हो ?”

ऊपर से जवाब आया, “मैं नवीनानन्द हूँ।”

तब सत्यानन्द ने कहा, “तुम दस हजार सन्तान हो, आज तुम्हारी विजय होगी, तोपें छीन लो।” आगे के अश्वारोही जीवानन्द ने कहा, “आओ।”

वे दस हजार सन्तान—घुड़सवार और पैदल बड़े वेग से जीवानन्द के पीछे-पीछे चले। पैदल के कन्धे पर बन्दूक, कमर में तलवार, हाथ में बल्लम। वन से निकलते ही वह अजस्र गोलों की वर्षा उन्हें छिन्न भिन्न करने लगी। बहुत-से सन्तान विना लड़ाई के मैदान में काम आ गये। एक ने जीवानन्द से कहा, “जीवानन्द, व्यर्थ की प्राणि-हत्या से क्या होगा ?”

जीवानन्द ने फिर कर देखा, भवानन्द थे। जीवानन्द ने पूछा, “तुम क्या करने के लिए कहते हो ?”

भवा०—वन के भीतर रह कर पेड़ों की आड़ से हम अपनी जान बचायें; तोपों के सामने, खुले मैदान में, विना तोपों के यह सन्तान-सेना एक क्षण नहीं टिकेगी; परन्तु पेड़ों की आड़ से बहुत देर तक लड़ाई लड़ी जा सकेगी।

जीवानन्द—तुमने ठीक कहा है, परन्तु प्रभु ने आज्ञा दी है, तोपें छीन लेनी होंगी, इसलिए हम लोग तोपें छीनने के लिए बढ़ेंगे।

भवा०—किसकी मजाल जो तोपें छीन ले ? परन्तु अगर जाना ही है, तो तुम निरस्त हो, मैं जाता हूँ।

जीवा०—यह नहीं होगा, भवानन्द, आज मेरे मरने का दिन है।

भवा०—आज मेरे मरने का दिन है।

जीवा०—मुझे प्रायश्चित्त करना है।

भवा०—तुम्हारा शरीर निष्पाप है, तुम्हारा प्रायश्चित्त नहीं। मेरा चित्त क्लृप्त है, मुझे ही मरना होगा। तुम रहे, मैं जाता हूँ।

जीवा०—भवानन्द, तुम्हारा क्या पाप है, मैं नहीं जानता; परन्तु तुम रहेगे तो सन्तानों का कार्योद्धार होगा। मैं जाता हूँ।

चुप रहकर अन्त में भवानन्द ने कहा, “मरने की ज़रूरत होगी तो आज ही मरूँगा, जिस दिन मरने की आवश्यकता होगी, उसी दिन मरूँगा; मरने के लिए समय असमय क्या ?”

जीवा०—तो आओ ।

इस बात के बाद भवानन्द सबसे आगे हुए । तब गोलों के दल के दल, भुण्ड के भुण्ड, सन्तानों की सेना पर गिर कर उसके टुकड़े-टुकड़े करने लगे, चीर कर निकलने लगे, उलट कर चले जाने लगे, इस पर दुश्मन के बन्दूक-वाले सिपाही अव्यर्थ लक्ष्य से सन्तानों की क्रतार की क्रतार ज़मीन पर छलाने लगे । ऐसे समय भवानन्द ने कहा, “इस तरङ्ग में आ ज सन्तानों का कूदना है, भाइयो, कौन-कौन कूद सकते हो ? इस समय गाओ—“वन्दे मातरम् !” तब ऊँचे स्वर से, मेघमल्लार राग में, हज़ारों कण्ठों से सन्तान-सेना तोपों की ताल-ताल पर गाने लगी—“वन्दे मातरम् ।”



दसवाँ परिच्छेद

वे दस हज़ार सन्तान 'वन्दे मातरम्' गाते हुए बल्लम उठाकर बहुत द्रुत वेग से तोपों पर जा पड़े। गोलों की मारों से टुकड़े-टुकड़े होकर, उखड़ कर, बहुत ही विशृङ्खल हो गये, फिर भी सन्तानों की सेना लौटी नहीं। उसी समय कैप्टेन टामस की आज्ञा से सिपाहियों के एक दल ने बन्दूक पर सज्जीन चढ़ाकर प्रबल वेग से सन्तानों के दक्षिण पार्श्व पर आक्रमण किया। दोनों ओर से अक्रान्त होकर सन्तान-सेना बिलकुल निराश हो गई। प्रतिमुहूर्त सैकड़ों सन्तान काम आने लगे। तब जीवानन्द ने कहा, “भवानन्द, तुम्हारी ही बात सही है, अब वैष्णवों के नाश की ज़रूरत नहीं; हम धीरे-धीरे लौटें।”

भवा०—अब लौटोगे किस तरह ? इस समय जो पीछे घूमेगा, वही मरेगा।

जीवा०—सामने और दायें बाजू से आक्रमण हो रहा है। बाईं ओर कोई नहीं; चलो, धीरे-धीरे घूमकर बाईं ओर से घेरकर निकल जायँ।

भवा०—निकलकर कहाँ जाओगे ? वहाँ नदी जो है; नई वर्षा से नदी बहुत प्रबल हो गई है। तुम आँगरेज़ों के गोलों से भगकर इस सन्तान-सेना को नदी में डुबाओगे ?

जीवा०—मुझे याद आ रहा है, नदी पर एक पुल है।

भवा०—यह दस हज़ार सेना उस पुल से पार कराते इतनी भीड़ होगी कि मेरा खयाल है, एक तोप आसानी से कुल सेना को भून डालेगी।

जीवा०—एक काम करो; थोड़ी सेना तुम अपने साथ रखो। इस लड़ाई में तुमने जो हिम्मत और चतुरता दिखाई है, तुम्हारा असाध्य कुछ भी नहीं।

तुम वह अल्पसंख्यक सेना लेकर सामना बचाओ। मैं तुम्हारी सेना की ओट से बाक़ी सन्तानों को पुल पार करा ले जाऊँ। तुम्हारे साथ जो लोग रहें, वे ज़रूर काम आर्थेंगे। मेरे साथ जो रहें, वे बचें तो बच सकते हैं।

भवा०—अच्छा, मैं वैसा करता हूँ।

तब भवानन्द ने दो हज़ार सन्तान लेकर, फिर 'वन्दे मातरम्' की आवाज़ उठाकर, बड़े उत्साह से अँगरेज़ों की गोलन्दाज़-सेना पर आक्रमण किया। वहाँ घमासान लड़ाई होने लगी। परन्तु तोपों के सामने तुच्छ सन्तान-सेना कितनी देर टिकती, कटे धानों की तरह गोलन्दाज़ उन्हें धराशायी करने लगे।

इस अवसर पर जीवानन्द बाक़ी सन्तान-सेना का मुँह कुछ फेरकर बाईं ओर से वन का चक्कर लगाते हुए धीरे धीरे चले। कैप्टेन टामस के एक सह-योगी लेफ्टीनैन्ट वाटसन ने दूर से देखा कि सन्तानों का एक दल धीरे धीरे भग रहा है, तब वे एक दल फ़ौजदारी के सिपाहियों का और एक दल परगना-सिपाहियों का लेकर जीवानन्द के पीछे लगे।

कैप्टेन टामस ने यह देखा। उन्होंने कैप्टेन हे नाम के एक सहयोगी से कहा, "मैं दो-चार सौ सिपाही लेकर सामने के इन उखड़े बाग़ियों का काम तमाम करता हूँ, तुम तोपें और बाक़ी सिपाहियों को लेकर उन लोगों की तरफ़ दौड़ो, बाईं ओर से लेफ्टीनैन्ट वाटसन जा रहे हैं, तुम दाईं ओर से जाओ। और देखो, बढ़कर पुल का मुँह बन्द करना होगा, तो तीन तरफ़ से उन लोगों को घेरकर जाल की चिड़ियों की तरह उन्हें मार सकेगो। वे देशी फ़ौज के आदमी भगते बहुत हैं, भगने में ही दक्ष हैं। इसलिए सहज ही तुम उन्हें पकड़ नहीं पाओगे, तुम सवारों को ज़रा छिपकर चक्करदार रास्ते से बढ़कर पुल के मुँह पर खड़े होने के लिए कहो, तो काम बन जायगा।" कैप्टेन हे ने वैसा ही किया।

"अतिदुर्घटना लड़ना।" कैप्टेन टामस ने सन्तानों को बहुत तुच्छ समझ कर, सिर्फ़ दो सौ पैदल भवानन्द के मुक्काबले के लिए रखकर, बाक़ी

कुल सिपाहियों को हे के साथ भेज दिया। चतुर भवानन्द ने जब देखा, 'अंगरेजों की सब तोपें गईं', सब सेना गई, जो थोड़े से सिपाही रह गये, वे सहज ही मार लिये जायेंगे, तब अपने बचे हुए आदमियों को बुलाकर उन्होंने कहा, "इन कुछ आदमियों को मारकर मुझे जीवानन्द की मदद के लिए जाना है। एक दफा और तुम लोग 'जय जगदीश हरे' कहो।" तब वह अल्प-संख्यक सन्तान-सेना 'जय जगदीश हरे' कहकर बाघ की तरह कैप्टेन टामस पर दूट पड़ी। उस आक्रमण की उग्रता तिलङ्गे सिपाही सह नहीं सके, वे काम आये। भवानन्द ने तब बढ़कर कैप्टेन टामस के बाल पकड़ लिये। अन्त तक कैप्टेन लड़ते रहे। भवानन्द ने कहा, "कसान साहब, तुम्हारी जान नहीं लूंगा, अंगरेज हमारे दुश्मन नहीं। तुम मुसलमानों के सहायक होकर क्यों आये हो? अच्छा, तुम्हें मैंने प्राणदान दिया, लेकिन इस समय तुम बन्दी हो। अंगरेजों की जय हो, हम तुम्हारे मित्र हैं।"

भवानन्द का वध करने के लिए कैप्टेन टामस ने सङ्गीन लगी बन्दूक उठाने की कोशिश की लेकिन भवानन्द ने उसे बाघ की तरह पकड़ा था, कैप्टेन टामस हिल नहीं सका। तब भवानन्द ने अनुचरों से कहा, "इसे बाँधो।" दो-तीन सन्तान आये और कैप्टेन टामस को बाँध लिया। भवानन्द ने कहा, इसे एक थोड़े पर चढ़ा लो, चलो, इसे लेकर हम लोग जीवानन्द गोस्वामी की मदद के लिए चलें।"

तब वे अल्पसंख्यक सन्तान कैप्टेन टामस को बाँधकर थोड़े पर लेकर 'वन्दे मातरम्' गाते हुए वाटसन की तरफ दौड़े।

जीवानन्द की सन्तान-सेना का उत्साह जाता रहा था, वह भगने पर तुली थी। जीवानन्द और धीरानन्द ने उसे समझाकर संयत किया, परन्तु सबको नहीं कर सके, कुछ भगकर आम के वन में ठहरी। बाकी सेना को जीवानन्द और धीरानन्द पुल के मुख पर ले गये। परन्तु वहाँ हे और वाटसन ने दोनों तरफ से घेर लिया; अब बचाव नहीं रहा।

ग्यारहवाँ परिच्छेद

ऐसे समय टामस की तोपें दायें आकर पहुँचीं। तब सन्तानों के दल बिलकुल कट-छंट गये, किसी के बचने की कुछ भी आशा नहीं रही। सन्तानों में जिससे जिधर हुआ, भगने लगा। जीवानन्द और धीरानन्द ने लोगों को संयत और एकत्र करने के बड़े प्रयत्न किये, पर किसी तरह नहीं कर सके। उसी समय ऊँची आवाज़ आई, “पुल पर जाओ, पुल पर जाओ, उस पार जाओ। नहीं तो नदी में डूब कर मरोगे, धीरे धीरे आंगरेजों की सेना की तरफ मुँह करके पुल पर जाओ।”

जीवानन्द ने देखा, सामने भवानन्द थे। भवानन्द ने कहा, “जीवानन्द, पुल पर ले जाओ, बचाव नहीं।” तब धीरे धीरे हटती हटती सन्तान-सेना पुल के पार चली। परन्तु पुल पाकर, बहुत-से सन्तान एक साथ पुल पर चढ़े कि आंगरेजों की तोपों का सुयोग मिला, गोले एक साथ पुल बहारने से लगे। सन्तानों का दल विनष्ट होने लगा। भवानन्द, जीवानन्द, धीरानन्द एक जगह थे। एक तोप के अत्याचार से भयङ्कर रूप से सन्तानों का नाश हो रहा था। भवानन्द ने कहा, “जीवानन्द, धीरानन्द, आओ, तलवार के बल पर हम तीनों इस तोप पर क़ब्ज़ा करें। तीनों ने तलवार निकाल कर उस तोप पर हमला किया, पास के गोलन्दाजों का काम तमाम कर दिया। तब दूसरे सन्तान उनकी मदद के लिए बढ़े। तोप पर भवानन्द का क़ब्ज़ा हो गया। तोप पर अधिकार करके भवानन्द उस पर चढ़कर खड़े हो गये, ताली बजाते हुए कहा, “ऋहो, वन्दे मातरम् !” सबने गाया “वन्दे मातरम् !” भवानन्द ने कहा, “जीवानन्द, यह तोप घुमाकर इन बेटों को पूड़ी का मैदा तैयार करें।” सन्तानों ने पकड़कर तोप घुमाई। तब तोप उच्च नाद से, वैष्णवों

के कानों में जैसे हसि-शब्द से पुकारने लगी। बहुत-से सिपाही उससे मरे और मरने लगे। भवानन्द ने वह तोप खींचकर पुल के मुँह पर लगाकर कहा, “तुम दोनों, सन्तानों की सेना का क्रतार में पुल पार करा ले जाओ, मैं अकेला व्यूह का मुँह रख रहा हूँ—तोप चलाने के लिए मेरे पास कुछ गोलन्दाज़ दे जाओ।” बीस चुने हुए सन्तान भवानन्द के पास रहे।

उधर अनगिनती सन्तान जीवानन्द और धीरानन्द की आज्ञा के अनुसार क्रतार बांधकर पुल पर से उस पार जाने लगे। अकेले भवानन्द ने बीस सन्तानों की सहायता से उसी एक तोप से बहुत-सी सेना भून डाली। परन्तु यवनों की सेना ज्वार की उठती तरङ्गों की तरह थी। तरङ्ग पर तरङ्ग, तरङ्ग पर तरङ्ग! भवानन्द को घेरकर, उत्पीड़ित कर डुबाती हुई-सी मालूम देने लगी। भवानन्द अश्रान्त, अजेय, निर्भीक हैं—तोप की आवाज़ आवाज़ पर कितनी सेना विनष्ट करने लगे। यवन आधी से पीड़ित तरङ्गों की तरह उन पर चोटें करने लगे, लेकिन बीस सन्तान तोप लिये हुए पुल का मुँह बन्द किये रहे। वे मरकर भी नहीं मरते, यवन पुल पर चढ़ नहीं पाते। वे वीर अजेय हैं, वह जीवन अविनश्वर है। अक्सर प्राप्त कर सन्तानों की सेना के दल के दल पुल के उस पार गये और कुछ देर पुल की रक्षा होने पर ही कुल सन्तान पुल के उस पार चले जायँ—ऐसे समय कहाँ से तोप गरजी—“अररर धम्।” दोनों दलवालों ने कुछ देर लड़ाई बन्द करके आँख उठाकर देखा—यह तोप कहाँ की है! देखा, वन के भीतर से कुछ तोपें देशी गोलन्दाज़ों से दागी जाकर बाहर घसीटी जा रही हैं। निकल कर वे बड़ी बड़ी सत्रह तोपें सत्रह मुँहों से धुआँ उगलती हुईं वे साहब की सेना पर आग बरसाने लगीं। घोर शब्द से वन, गिरि, सभी कुछ प्रतिध्वनित हुआ। सारे दिन की लड़ाई से थकी हुई यवन-सेना प्राण-भय से काँपी। आग की वर्षा से तिरङ्गे, मुसलमान, हिन्दुस्तानी भगने लगे। सिर्फ़ दो-चार गोरे सीधे खड़े हुए मरने लगे।

भवानन्द तमाशा देख रहे थे; कहा, “भाइयो, मुसलमान भग रहे हैं, आओ, एक दफ़ा इन पर हमला करें।” तब चींटियों की क्रतारें जैसी, सन्तानों के दल नये उत्साह से पुल के इस पार आ-आकर यवनों पर हमला करने को दौड़ पड़े। वे लोग एकाएक यवनों पर दूटे। यवनों को लड़ने का अवकाश नहीं मिला—जैसे भागीरथी-तरङ्ग उस दम्भी बृहत् पर्वताकार मत्त हाथी को बहा ले गई थी, सन्तान वैसे ही यवनों को बहा ले चले। यवनों ने देखा, पीछे भवानन्द की पेदल-सेना है, सामने महेन्द्र की तोपें। हे साहब का सर्वनाश आ पहुँचा। कुछ भी नहीं टिका—बल, वीरता, साहस, कौशल, शिज्ञा, दम्भ, सब बह गया। फौजदारी, बादशाही, अँगरेज़ी, देशी, विलायती, काले, गोरे, सब सैनिक ज़र्मन चूमने लगे। विधर्मियों का दल भगा। ‘मार मार’ शब्द से जीवानन्द, धीरानन्द विधर्मी सेना के पीछे दौड़े। उनकी तोपें सन्तानों ने छीन लीं। बहुत-से अँगरेज़ और सिपाही काम आये। सब खेल बिगड़ गया देखकर कैप्टेन हे और वाटसन ने भवानन्द के पास कहला भेजा, “हम सब तुम्हारे हाथ गिरफ़्तार हो रहे हैं, अब और जानें न मारो।” जीवानन्द ने भवानन्द के मुँह की तरफ़ देखा। भवानन्द ने मन में कहा, “यह नहीं होगा, मुझे आज मरना जो होगा।” तब भवानन्द ने हाथ उठाकर, ऊँचे स्वर से ‘हरि बोल’ कहते हुए कहा, “मारो-मारो।”

फिर एक ज्ञान नहीं बची। एक जगह २०-३० गोरे इकट्ठे होकर जान हथेली पर लिये भयङ्कर युद्ध कर रहे थे। जीवानन्द ने कहा, “भवानन्द, हमारी विजय हुई है अब रहने दिया जाय, इन कुछ आदमियों के अलावा और कोई जीता नहीं, इन्हें प्राणदान देकर चलो, हम लोग लौट चलें।” भवानन्द ने कहा, “एक आदमी के बचे रहते भवानन्द नहीं लौटेगा। जीवानन्द, तुम्हें क्रसम देकर कहता हूँ, तुम दूर खड़े हुए देखो, मैं इन इतने अँगरेज़ों को कैसे तलवार के घाट उतारता हूँ।”

कैप्टेन टामस घोड़े की पीठ पर बैधा था। भवानन्द ने आज्ञा दी, “उसे मेरे सामने रखो, पहले वह काम आयेगा तब मैं मरूँगा।”

कैप्टेन टामस बँगला समझता था। समझकर अँगरेज़-सेना से कहा, “अँगरेज़ो, मैं तो मर चुका हूँ, तुम लोग प्राचीन इंग्लैंड का नाम रखना, तुम्हें ईसामसीह की क्रसम देता हूँ, पहले मुझे मारो, इसके बाद इस विद्रोही को मारो।

“भन्न”—से एक बुलेट आई, एक आयरिश मैन ने कैप्टेन टामस पर गोली छोड़ी। गोली सर पर लगी। कैप्टेन टामस निष्प्राण हो गये। भवानन्द ने तब पुकार कर कहा, “मेरा ब्रह्मास्त्र व्यर्थ हो गया है, कौन ऐसा पार्थ, वृकोदर, नकुल, सहदेव है जो इस समय मेरी रक्षा करे? देखो, बाणाहत बाघों की तरह गोरे इस समय मुझ पर झुके हैं। मैं मरने के लिए आया हूँ, मेरे साथ मरना चाहते हो, ऐसे सन्तान कौन हो?”

पहले धीरानन्द बढ़ा, पीछे जीवानन्द; साथ और १०-१५-२०-५० सन्तान आये। भवानन्द धीरानन्द को देखकर बोले, “तुम क्या हमारे साथ मरने के लिए आये?”

धीरा०—क्यों, मरने में भी किपी का इजारा है?

यह कहते हुए धीरानन्द ने एक गोरे को घायल किया।

भवा०—यह नहीं, मरने पर स्त्री-पुत्रों के मुँह देखकर तो दिग नहीं पार कर सकोगे?

धीरा०—कल की बात कह रहे हो? अभी तक नहीं समझे? (धीरानन्द ने घायल गोरे का वध किया।)

भवा०—नहीं। (इस समय एक गोरे के वार से भवानन्द का दायरा हाथ कट गया।)

धीरा०—मेरी क्या मजाल जो तुम्हारे जैसे पवित्रात्मा से वे सब बातें कहूँ? मैं सत्यानन्द का भेजा हुआ चर होकर गया था।

भवा०—वह क्या ? मुझ पर महाराज का अविश्वास ? (भवानन्द तब एक हाथ से लड़ रहे थे ।) धीरानन्द ने उन्हें बचाते हुए कहा, “कल्याणी से तुम्हारी जो बात हुई थी; वे सब उन्होंने अपने कानों से सुनी हैं ।”

भवा०—किस तरह ?

धीरा०—वे स्वयं वहाँ थे । सावधान रहना । (भवानन्द एक गोरे से घायल हुए, फिर उसे घायल किया ।) वे कल्याणी के गीता पढ़ा रहे थे, ऐसे समय तुम आये । सावधान ! (भवानन्द का बाँया हाथ कटा ।)

भवा०—मेरा मृत्यु-संवाद उन्हें देना । कहना, मैं अविश्वासी नहीं ।

धीरानन्द की आँखों में आँसू आ गये; लड़ते हुए कहा, “यह वे जानते हैं । कल रात का आशीर्वादवाला वाक्य याद करो । और मुझसे कह दिया है, भवानन्द के पास रहना । आज वह मरेगा । मृत्यु के समय उससे कहना, मैं आशीर्वाद देता हूँ, परलोक में उसे वैकुण्ठ प्राप्त होगा ।”

भवानन्द ने कहा, “भाई, सन्तानों की जय हो ! मेरी मृत्यु के समय एक बार ‘वन्दे मातरम्’ तो सुनाओ ।”

तब धीरानन्द की आज्ञा के अनुसार युद्ध से पागल हुए सब सन्तानों ने ‘वन्दे मातरम्’ गाया । इससे उनकी बाँहों में दूने बल का सञ्चार हो गया । उस भयङ्कर मुहुर्त्त में बाक्री गोरे निहत हुए । रणक्षेत्र में फिर शब्द नहीं रहा ।

उस समय भवानन्द ‘वन्दे मातरम्’ गाते हुए, मन से विष्णुपद ध्यान करते हुए परलोक-प्रयाण कर गये ।

हाय ! रमणीरूप लावण्य ! इस संसार में तुम्हें ही धिक्कार है !

बारहवाँ परिच्छेद

लड़ाई फ़तह होने के बाद, अजय के किनारे सत्यानन्द को घेरकर विजयी वीर नाना प्रकार के उत्सव करने लगे। सिर्फ़ सत्यानन्द उदास हैं, भवानन्द के लिए।

अब तक वैष्णवों के लड़ाई के बाजे ज़्यादा नहीं थे, परन्तु उस समय न जाने कहाँ से हज़ारों नक्कारे, जङ्गी ढोल, तुरहियाँ, शहनाइयाँ, दमामे, रामसिङ्गा, कांसी आदि आ गये। जयसूचक बाजे से वन, प्रान्तर, नदियाँ, शब्द और प्रतिध्वनि से भर गईं। इस तरह सन्तानों ने बहुत देर तक बहुत तरह के उत्सव मनाये; बाद को सत्यानन्द ने कहा, “जगदीश्वर ने आज कृपा की है, सन्तानों की विजय हुई है; परन्तु एक काम बाक़ी है। जो लोग हमारे साथ उत्सव नहीं मना सके, जिन लोगों ने हमारे उत्सव के लिए जान दी है, उन्हें भूलने से काम नहीं बनेगा। जो लोग रणक्षेत्र में हत होकर पड़े हैं, चलो, हम लोग चलकर उनका सत्क्रिया करें।” तब सन्तानों का दल ‘वन्दे मातरम्’ कहता हुआ निहत्तों की क्रिया के लिए चला। बहुत-से आदमियों ने इकट्ठे होकर ‘हरि बोल’ कहते हुए, चन्दन की लकड़ी के बोझ ढा लाकर, भवानन्द की चिता बनाई और उस पर भवानन्द को लेटाकर आग लगाकर, चिता को घेरकर चलते हुए ‘हरे मुरारे’ गाने लगे। ये विष्णुभक्त हैं, वैष्णव-सम्प्रदाय-भुक्त नहीं, इसलिए दाह करते हैं।

कानन में, इसके बाद, केवल सत्यानन्द, जीवनन्द, महेन्द्र, नवीनानन्द और धीरानन्द बैठे हुए हैं। एकान्त में पाँच आदमी परामर्श कर रहे हैं। सत्यानन्द ने कहा, “इतने दिनों तक हम लोगों ने जिसके लिए सर्व कर्म, सर्व धर्म, सर्व सुख छोड़ा था, वह व्रत सफल हुआ है। इस प्रदेश में यवन-

सेना अब नहीं। जो बची-बुची है, वह एक क्षण भी हमारे सामने नहीं अड़ेगी। तुम लोग इस समय क्या परामर्श देते हो ?”

जीवानन्द ने कहा, “बलिप, इसी समय चलकर राजधानी पर अधिकार करें।”

सत्या०—मेरा भी यही मत है।

धीरा०—सैन्य कहाँ ?

जीवा०—क्यों, यही सैन्य।

धीरा०—यह सैन्य कहाँ है ? किसी को देख रहे हैं ?

जीवा०—जगह जगह सब विश्राम कर रहे हैं, डड्डा बजाने पर आ जायेंगे।

धीरा०—एक आदमी भी नहीं पाइएगा।

सत्या०—क्यों ?

धीरा०—सब लूटने के लिए निकल गये हैं। गाँव इस समय अरक्षित हैं। मुसलमानों के गाँव और रेशम की कोठियाँ लूटकर सब अपने अपने घर जायेंगे। इस समय किसी को भी नहीं पाइएगा, मैं तलाश कर आया हूँ।

सत्यानन्द का चेहरा उतर गया, बोले, “जो हो, यह कुल प्रदेश हमारे अधिकार में आया। यहाँ और कोई नहीं जो हमसे छेड़ करे। अस्तु वीरेन्द्र भूमि में तुम लोग सन्तानों का राज्य फैलाओ। प्रजाओं के पास से कर लो और नगर पर अधिकार करने के लिए सेना इकट्ठी करो। हिन्दुओं का राज्य हुआ है, सुनने पर बहुत-से लोग सन्तानों का झन्डा उड़ायेंगे।”

तब जीवानन्द आदिकों ने सत्यानन्द को प्रणाम कर कहा, “हम लोग प्रणाम कर रहे हैं, हे महाराजाधिराज, आज्ञा हो तो इसी वन में हम लोग आपका सिंहासन स्थापित कर।”

सत्यानन्द ने अपने जीवन में यह पहले पहल काप किया। कहा, “छिः ! मुझे क्या तुम लोगों ने खाली घड़ा समझ लिया है ? हम कोई राजा नहीं—हम संन्यासी हैं। इस समय देश के राजा स्वयं वैकुण्ठनाथ हैं। नगर पर अधि-

कार हो जाने पर जिसके सिर तुम्हारी इच्छा हो, राजमुकुट पहनाना, परन्तु यह निश्चित रूप से समझना कि इस ब्रह्मचर्य को छोड़कर और कोई भी आश्रम स्वीकृत नहीं करूँगा। इस समय तुम लोग अपने अपने काम पर जाओ।”

तब चार आदमी ब्रह्मचारी के प्रणाम कर उठे। दूसरों को नहीं मालूम हुआ, सत्यानन्द ने इशारा कर महेन्द्र को रक्खा। बाक़ी तीन आदमी चले गये, महेन्द्र रहे। सत्यानन्द ने तब महेन्द्र से कहा, “तुम सब लोगों ने विष्णु-मण्डप में शपथ करके सन्तानधर्म ग्रहण किया था। भवानन्द और जीवानन्द दोनों आदमियों ने प्रतिज्ञा तोड़ी है। भवानन्द ने आज अपना स्वीकृत प्रायश्चित्त कर डाला। मुझे सदा भय है, किसी दिन जीवानन्द भी प्रायश्चित्त करके देह का विसर्जन न करे। परन्तु मुझे एक भरोसा है, किसी गृह कारण से वह अभी मर नहीं सकेगा। अकेले तुमने प्रतिज्ञा रक्खी है। इस समय सन्तानों का कार्योद्धार हुआ; प्रतिज्ञा थी, जब तक सन्तानों का कार्योद्धार न हो, तुम स्त्री-कन्या का मुँह नहीं देखोगे। अब काम पूरा हो गया है, अब तुम फिर गृहस्थ हो सकते हो।”

महेन्द्र की आँखों से आँसुओं की धारा बह चली। महेन्द्र ने कहा, “महाराज, गृहस्थ होऊँ किसे लेकर? स्त्री ने तो आत्महत्या की है, और लड़की कहाँ है, यह मैं जानता नहीं, खोज भी कहाँ करूँ? आपने कहा है, जीती है, इतना ही जानता हूँ, और कुछ नहीं जानता।”

सत्यानन्द ने तब नवीनानन्द को बुलाकर महेन्द्र से कहा, “ये नवीनानन्द गोस्वामी हैं—बड़े ही पवित्रचेता, मेरे प्रिय शिष्य। ये तुम्हारी कन्या का पता बता देंगे।” यह कहकर सत्यानन्द ने शान्ति को कुछ इङ्गित किया। शान्ति समझकर प्रणाम कर, बिदा होने को है कि महेन्द्र ने पूछा, “कहाँ तुमसे मुलाकात होगी?”

शान्ति ने कहा, “मेरे आश्रम आइए।” यह कहकर शान्ति आगे चली।

तब महेन्द्र ब्रह्मचारी के पैर छूकर बिदा हुए और शान्ति के साथ साथ उसके आश्रम पहुँचे। रात तब बहुत हो चुकी थी। फिर भी शान्ति विश्राम न कर नगर की ओर चल दी।

सबके चले जाने पर, ब्रह्मचारी अकेले पृथ्वी पर प्रणत होकर, मिट्टी पर माथा रखकर मन-ही-मन जगदीश्वर का ध्यान करने लगे। रात बीत आई। ऐसे समय किसी ने आकर मस्तक स्पर्श कर कहा, “मैं आया हूँ।”

ब्रह्मचारी उठकर चौंककर बड़े व्यग्रभाव से बोले, “आप आये हैं, क्यों?” जो आये थे, उन्होंने कहा, “दिन पूरे हो गये हैं।” ब्रह्मचारी ने कहा, “हे प्रभो, आज क्षमा कीजिए, आगामी माघ-पौर्णमासी में मैं आपकी आज्ञा पूरी करूँगा।”

चतुर्थ खंड

पहला परिच्छेद

उसी रात को हरि-ध्वनि से वह प्रदेश पूर्ण हो गया। सन्तानों के दल के दल, यहाँ वहाँ ऊँचे स्वर से, कोई 'वन्दे मातरम्', कोई 'जय जगदीश हरे' गाते हुए, धूमते रहे। शत्रु की सेना के कोई अस्त्र हरण करने लगा, कोई वस्त्र, कोई मुर्दे के मुँह पर लात मारने लगा, कोई दूसरी तरह का उपद्रव करने लगा। कोई गाँव की तरफ, कोई शहर की तरफ दौड़कर पथिक या गृहस्थ को पकड़कर कहने लगा, बोल 'वन्दे मातरम्' नहीं तो मार डालूँगा। कोई हलवाई की दुकान लूटकर खाने लगा। कोई अहीर के घर में घुस कर दही की हण्डी उतारकर हाथ साफ करने लगा। कोई कहने लगा, "हम लोग ब्रज के ग्वाल-बाल आये हैं, ग्वालिन कहाँ है?" उसी एक रात में गाँव-गाँव, नगर-नगर महाकोलाहल मच गया। सबने कहा, "मुसलमानों की हार हुई है, देश फिर हिन्दुओं का हुआ है। सब लोग एक बार खुलकर हरि हरि कहो।" गाँव के लोग मुसलमान देखने पर मारने के लिए पीछे पड़ने लगे। कोई कोई उसी रात को दलबद्ध होकर मुसलमानों के मुहल्ले में जाकर उनके घरों में आग लगाकर उनका सर्वस्व लूट लेने लगे। बहुत-से मुसलमान काम आये। बहुत-से मुसलमान दाढ़ी मुड़वाकर देह में मृत्तिका चढ़ाकर हरिनाम करने लगे। पूछने पर कहने लगे, "मैं हिन्दू।"

डरे हुए मुसलमानों के दल के दल शहर की ओर दौड़े। चारों ओर राज-कर्मचारी दौड़धूप करने लगे। बाक्री सिपाही वर्दी पहन कर शहर को बचाने के लिए क्रतार बाँधकर खड़े हुए। शहर के गढ़ के घाट-घाट पर, कमरे कमरे

पर, इथियारबन्द रक्तक बड़ी सावधानी से द्वाररक्षा करने लगे। सारे आदमी सारी रात जागकर 'क्या होता है, क्या होता है' सोचने लगे। हिन्दू कहने लगे, "आय, सन्यासी लोग आये, माता दुर्गा करे, हिन्दू के भाग्य में वह दिन हो।" मुसलमान कहने लगे, "ऐ अल्लाह, अकबर, इतने दिनों बाद कुरानशरीफ क्या बिलकुल भूठ साबित हुई? हम लोग तो पाँचों वक्त नमाज़ पढ़ते हैं, लेकिन इन तिलकधारी हिन्दुओं की जमात पर फतह नहीं पा सके, दुनिया में सब धोखा है।" इस तरह कोई रोकर, कोई हँस कर, बड़े आग्रह से रात पार करने लगे।

ये बातें कल्याणी के कानों में गईं; बच्चे, बूढ़े, स्त्रियाँ सबको मालूम हो चुकी थीं। कल्याणी ने मन ही मन कहा, "हे जगदीश्वर, तुम्हारी जय हो! आज तुम्हारा काम पूरा हुआ। आज मैं पति को देखने के लिए चलींगी। हे मधुसूदन, आज मेरी सहायता करो।"

गहरी रात को बिस्तार छोड़कर उठकर, अकेली खिड़की खोलकर, इधर-उधर देखती हुई किसी को न देखकर, धीरे-धीरे चुपचाप कल्याणी गौरीदेवी की पुरी से राजपथ पर निकली। मन ही मन इष्ट देवता का स्मरण कर कहा, "देखो महाराज, आज जैसे पदचिह्न में उनसे मुलाकात हो।"

कल्याणी शहर की चट्टी में पहुँची। पहरेवाले ने पूछा, "कौन जाता है?" कल्याणी ने डरी आवाज़ में कहा, "मैं औरत हूँ।" पहरेवाले ने कहा, "जाने का हुक्म नहीं।" बात दफादार के कानों में गई। उसने कहा; "बाहर निकलना मना नहीं, भीतर आना मना है।"

सुनकर पहरेवाले ने कहा, "जाओ माई, जाने की मनाही नहीं, लेकिन आज की रात बड़ी आफ़त है, क्या जाने माई, तुम्हें क्या हो, डाकुओं के हाथ पड़े या गढ़े में गिरकर मरो। आज रात तुम्हें बाहर नहीं जाना चाहिए।"

कल्याणी ने कहा, “बाबा, मैं भिखारिन हूँ, मेरे पास एक फूटी कौड़ी भी नहीं, डाकू मुझसे नहीं बोलेंगे।”

पहरेवाले ने कहा, “उम्र तो है, माई, उम्र तो है; दुनिया में वही तो ज़ेवर है। हम ही डाकू बन सकते हैं।” कल्याणी ने देखा, बड़ी विपद् है। कुछ कहे बग़ैर चट्टी से बचकर चली गई। पहरेवाले ने देखा, माई रसिकता नहीं समझी, तब दुखी मन से गाँजे की दम लगाकर भिंभोटी-खम्माच में टप्पा अलापने लगा। कल्याणी चली गई।

उस रात पथिकों के दलों में कोई मार-मार-कर रहा है, कोई भगो-भगो कह रहा है; कोई रो रहा है, कोई हँस रहा है; जो जिसे देख रहा है, वह उसे पकड़ रहा है। कल्याणी बड़ी आफ़त में पड़ी। रास्ता याद नहीं, किसी से पूछने की हिम्मत नहीं, सब लड़ाई पर तुले हैं। सिर्फ़ छिप-छिप कर अँधेरे में रास्ता चलना पड़ रहा है। छिपकर जाती हुई भी वे बड़े ही उद्धत विद्रोहियों के एक दल के हाथ पड़ गईं। वे लोग बड़े ज़ोर से चिल्लाकर उन्हें पकड़ने के लिए दौड़े। तब ऊँची साँस लेकर भगती हुई कल्याणी जङ्गल के भीतर फ़ैल गईं। वहाँ भी दो-एक डाकू साथ-साथ, उनके पीछे-पीछे दौड़े। एक ने उनका आँचल पकड़ा, कहा, “तो फिर चाँद।” उसी समय एक आदमी और एका-एक आया और उल्टीड़नकारी के एक लाठी जमाई। चोट खाकर वह पीछे हट गया। इस बचानेवाले व्यक्ति का सन्यासी-वेश है—कृष्णसार-मृग के चर्म से बना आवृत है, उम्र बहुत थोड़ी। उसने कल्याणी से कहा, “तुम डरो मत, मेरे साथ आओ—कहाँ जाओगी?”

क०—पदचिह्न।

आगन्तुक चौंका, उसे आश्चर्य हुआ, पूछा, “तो कैसे?—पदचिह्न? यह कह कर आगन्तुक कल्याणी के दोनों कन्धों पर हाथ रखकर मुँह की तरफ़ उस अँधेरे में बड़े यत्न से देखने लगा।

पुरुष के स्पर्श से कल्याणी अकस्मात् रोमाञ्चित, भीत, चुञ्च, विस्मित, अश्रुविप्लुत हुई—ऐसी शक्ति नहीं कि भगों, भय से विह्वल हो गई थीं। आगन्तुकने निरीक्षण समाप्त होने पर उससे कहा, “हरे मुरारे ! पहवान लिया, तुम मुँहजली कल्याणी हो।”

कल्याणी ने डरकर पूछा, “आप कौन हैं ?”

आगन्तुक ने कहा, “मैं तुम्हारा दासानुदास हूँ, हे सुन्दरी, मुझ पर प्रसन्न होओ।”

कल्याणी द्रुत गति से वहाँ से हटकर तरजती-नारजती हुई बोली, “यह अपमान करने के लिए ही क्या आपने मेरी रत्ना की थी ? देख रही हूँ, आपका ब्रह्मचारी का वेश है, ब्रह्मचारी का क्या यही धर्म है ? मैं आज निःसहाय हूँ, नहीं तो तुम्हारे मुँह पर मैं लात मारती।”

ब्रह्मचारी ने कहा, “अयि स्मितवदने ! मैं बहुत दिनों से तुम्हारे इस सुन्दर शरीर के स्पर्श की कामना कर रहा हूँ।” यह कहकर ब्रह्मचारी ने द्रुत गति से दौड़कर कल्याणी को पकड़कर गहरा आलिङ्गन किया। तब कल्याणी खिलखिला कर हँस दी, कहा, “ऐ मेरे भाग ! पहले कह देती कि मेरी भी वही दशा है।”

शान्ति ने पूछा, “महेन्द्र की खोज में चली हो ?”

कल्याणी ने कहा, “तुम कौन हो ? तुम तो सब कुछ जानती हो देखती हूँ।”

शान्ति ने कहा, “मैं ब्रह्मचारी हूँ। सन्तान-सेना का अधिनायक—बहुत बड़ा वीर। मैं सब कुछ जानता हूँ। आज रास्ते में सिपाहियों और सन्तानों का जो उपद्रव है उससे आज तुम पदचिह्न नहीं जा सकोगी।”

कल्याणी रोने लगीं।

शान्ति ने तेवर बदलकर कहा, “डर क्या है ? हम लोग आँखों के तीरों से हजार दुश्मनों का क़त्ल करते हैं । चलो, पदचिह्न चले ।”

ऐसी बुद्धिमती स्त्री की सहायता पाकर कल्याणी ने जैसे हाथ बढ़ाकर स्वर्ग पाया । कहा, “तुम जहाँ भी ले जाओगी, मैं वहाँ जाऊँगी ।”

शान्ति तब उसे जङ्गली रास्ते से साथ ले चली ।

— — —

दूसरा परिच्छेद

जब शान्ति ने अपना आश्रम छोड़कर गहरी रात में नगर की तरफ यात्रा की थी, तब जीवानन्द आश्रम में उपस्थित थे। शान्ति ने जीवानन्द से कहा, “मैं नगर चली। महेन्द्र की खो के ले आऊँगी। तुम महेन्द्र से कह रखो कि उसके खी है।”

जीवानन्द भवानन्द से कल्याणी की जान के बचने का कुल हाल मालूम कर चुके थे, और उसका वर्तमान वासस्थान भी सब जगह विवरण करने-वाली शान्ति से सुन चुके थे। क्रमशः महेन्द्र के कुल बाते सुनाने लगे।

महेन्द्र ने पहले विश्वास नहीं किया। अन्त में मारे आनन्द के अभिभूत होकर सुग्धप्राय हो गये।

वह रात बीत जाने पर शान्ति की सहायता से महेन्द्र से कल्याणी की मुलाकात हुई। सुनसान वन में, सटे हुए सालों की अँधेरी छाँह में, चिड़ियों की नींद टूटने के पहले, दोनों ने एक दूसरे को देखा। गवाह सिर्फ वे नीले आसमान में विहार करनेवाले मलिन पड़ते हुए तारे और वे न काँपती हुई अनगिनती साल की कृतारे। दूर, पत्थर से रगड़ खाकर आवाज़ करती हुई, मधुर कल्लोलवाली सङ्कीर्ण नदी का तर-तर शब्द, कहीं पूरब में उगी हुई ऊँचा के मुकुट की ज्योति देखकर खुश हुई एक कायल की कूक।

दिन एक पहर हुआ। वहाँ शान्ति और जीवानन्द आकर मिले। कल्याणी ने शान्ति से कहा—“हम लोग आपके हाथों बिना मोल बिके हुए हैं। हमारी लड़की का पता बताकर यह उपकार पूरा कीजिए।”

शान्ति ने जीवानन्द के मुँह की ओर देखकर कहा, “मैं सोना चाहता हूँ। आठ पहर हो गये, मैं बैठा नहीं, दो रात नहीं सोया।”

कल्याणी मुस्कराई। जीवनन्द ने महेन्द्र के मुख की ओर देखकर कहा, “वह भार मुझ पर रहा। आप लोग पदचिह्न जाइए—वहाँ आपकी कन्या आपका मिलेगी।”

जीवनन्द भर्खर निमाइ के यहाँ लड़की लेने गये। काम बड़ा सीधा नहीं मालूम दिया।

निमाइ ने पहले लार घूँटी, एक दफा इधर-उधर देखा। इसके बाद एक साथ उसके नाक और होंठ फूलने लगे। इसके बाद वह रो दी। इसके बाद कहा, “मैं लड़की नहीं दूँगी।”

निमाइ ने इथेलियों से आँख पोंछी तो जीवनन्द ने कहा, “लेकिन मेरी दीदी, रोती क्यों हो ? इतनी दूर भी तो नहीं—उनके घर न हो तुम गईं और बीच बीच देख आईं।”

निमाइ ने होंठ फुलाकर कहा, “तो अपनी लड़की तुम ले ही क्यों न जाओ ?” यह कहकर सुकुमारी को लाकर गुस्से से धम्म से जीवनन्द के पास डाल कर पैर फैलाकर रोने लगी। फलतः जीवनन्द उस समय कुछ न कहकर इधर-उधर की फालतू बातें करने लगे। लेकिन निमाइ का गुस्सा न ठण्डा पड़ा। निमाइ बैठकर सुकुमारी के कपड़ों की गठरी, गहनों की सन्दूकची, बाल बांधने के लच्छे, खिलौने, गुड़िया जीवनन्द के सामने भपाभप फेंकने लगी। सुकुमारी वह सब अपने आप इकट्ठा करने लगी। उसने निमाइ से पूछा, “क्यों मा, हम कहाँ चलेंगे मा ?” निमाइ से और नहीं सहा गया। वह सुकुमारी को गोद में लेकर रोती हुई चली गई।



तीसरा परिच्छेद

पदविह्वल में नये दुर्ग में आज सुख से महेन्द्र, कल्याणी, जीवानन्द, शान्ति, निमाइ, निमाइ के पति और सुकुमारी बैठे हुए हैं। सब लोग सुखपूर्वक सम्मिलित हैं। शान्ति नवीनानन्द के वेश से आई थी। कल्याणी को जिस रात अपने कुटीर में लाई थी, उस रात को मना किया था कि नवीनानन्द स्त्री है, यह बात कल्याणी अपने पति से न कहे। एक दिन कल्याणी ने उसे अपने अन्तःपुर में बुला भेजा। नवीनानन्द अन्तःपुर में गये। नौकरों का निषेध नहीं माना।

कल्याणी के पास पहुँचकर शान्ति ने पूछा, “तुमने बुलाया क्यों है ?”

क०—मर्द बनकर कितने दिन रहोगी ? मुलाकात नहीं होती, बातें भी नहीं कर पाती। मेरे पति के सामने तुम्हें ज़ाहिर होना होगा।

नवीनानन्द बड़ी चिन्ता में रहे, देर तक कुछ कहा नहीं। अन्त में कहा, “उसमें बड़ा विघ्न है कल्याणी !”

दोनों में यही बातचीत होने लगी। इधर जिन नौकरों ने नवीनानन्द को अन्तःपुर जाने से रोका था, उन लोगों ने महेन्द्र को जाकर खबर दी कि नवीनानन्द ज़बर्दस्ती अन्तःपुर में घुस गये हैं, निषेध नहीं माना। महेन्द्र को कौतूहल हुआ, वे भी अन्तःपुर गये। कल्याणी के शयनगृह में जाकर देखा, नवीनानन्द गृह के भीतर खड़े हैं, कल्याणी उनके बदन में हाथ लगाये उनके बाघाम्बर की ग्रन्थि खोल रही है। महेन्द्र बड़े ही आश्चर्य में पड़े, बहुत ही नाराज़ हुए।

नवीनानन्द ने उन्हें देखकर हँसकर कहा, “क्यों गोसाईं ? सन्तान पर अविश्वास ?”

महेन्द्र ने कहा, “भवानन्द महाराज क्या विश्वासी थे ?”

नवीनानन्द ने निगाह बदलकर कहा, “कल्याणी क्या भवानन्द के बदन में भी हाथ लगाकर बाघाम्बर खोल देती थी ?” कहते हुए शान्ति ने कल्याणी के हाथ पकड़ लिये, बाघाम्बर खोलने नहीं दिया ।

महेन्द्र—इससे क्या ?

न०—मुझ पर अविश्वास कर सकते हैं, कल्याणी पर अविश्वास किस हिसाब से करते हैं ?

इस दफा महेन्द्र बहुत अप्रतिभ हुए । कहा, “कहाँ, किस तरह अविश्वास किया ?”

न०—नहीं तो मेरे पीछे पीछे अन्तःपुर में आकर हाज़िर हुए क्यों ?

म०—कल्याणी से मेरी कुछ बातचीत थी, इसी लिए आया हूँ ।

न०—तो अभी जाइए । कल्याणी से मेरी भी कुछ बातचीत है । आप हट जाइए, पहले मैं बातचीत कर लूँ । आपका घर है, आप हमेशा आ सकते हैं, मैं मुश्किल से एक दफा आ पाया हूँ ।

महेन्द्र बेवकूफ बन गये । कुछ भी नहीं समझ सके । ये सब बातें तो अपराधी की बातें जैसी नहीं । कल्याणी का भाव भी विचित्र है । वह भी तो अविश्वासी की तरह नहीं भगी, डरी नहीं, लजाई नहीं बल्कि मधुर मधुर हँस रही है । और कल्याणी—जिसने उस पेड़ के नीचे अनायास विष खा लिया था,—वह क्या अपराधिनी हो सकती है ? महेन्द्र यह सब सोच रहे हैं, ऐसे समय अभागिनी शान्ति ने महेन्द्र की दुरवस्था देखकर ज़रा मुस्कराकर कल्याणी की तरफ एक विलोल कटाक्ष किया । तब एकाएक अँधेरा मिट गया, महेन्द्र ने देखा, यह नारी का कटाक्ष है । हिम्मत पर ठहरकर नवीनानन्द की दाढ़ी पकड़कर खींची—कृत्रिम दाढ़ी-मूँछें खुल गईं । उसी समय अबसर देखकर कल्याणी ने बाघाम्बर की ग्रन्थियाँ खोल दीं—बाघाम्बर भी खुलकर गिर गया । पकड़ में आकर शान्ति नतमुखी हो रही ।

महेन्द्र ने तब शान्ति से पूछा, “तुम कौन हो ?”

शा०—श्रीमान् नवीनानन्द गोस्वामी ।

म०—वह तो जाल है, तुम स्त्री हो ।

शा०—इस समय निःसंशय ।

म०—तो एक बात पूछता हूँ—तुम स्त्री होकर सदा जीवानन्द महाराज से सहवास क्यों करती हो ?

शा०—वह बात आपसे अगर न कही ?

म०—तुम स्त्री हो, जीवानन्द महाराज यह जानते हैं ?

शा०—जानते हैं ।

सुनकर विशुद्धात्मा महेन्द्र बहुत विषण्ण हुए ।

देखकर कल्याणी रह नहीं सकी, कहा, “जीवानन्द गोस्वामी की धर्मपत्नी शान्तिदेवी हैं ।”

क्षण भर के लिए महेन्द्र का चेहरा खिला । फिर उस पर अँधेरा छा गया । कल्याणी समझ गई, कहा, “ये ब्रह्मचारिणी हैं ।”



चौथा परिच्छेद

उत्तर बङ्गाल मुसलमानों के हाथ से निकल गया है। मुसलमान कोई यह बात नहीं मानते ; मन को समझाते हैं, कहते हैं, कुछ लुटेरे बड़ा अत्याचार कर रहे हैं, हम अभी सज़ा देते हैं। इस तरह कितना समय पार होता नहीं कहा जा सकता ; परन्तु इसी समय वारेन हेस्टिङ्ग्स् ईश्वर के नियोग से बङ्गाल के गवर्नर-जनरल हैं। वारेन हेस्टिङ्ग्स् मन को समझानेवाले आदमी नहीं। उनमें यह भाव रहता तो आज भारत में ब्रिटिश साम्राज्य कहाँ प्रतिष्ठित होता ? सन्तानों को दवाने के लिए मेजर एडवर्डस् नाम के दूसरे सेनापति नई सेना लेकर खुले तौर से हाज़िर हुए।

एडवर्डस् ने देखा, यह योःपीय युद्ध नहीं। दुश्मनों के सेना नहीं, नगर नहीं, राजधानी नहीं, क़िला नहीं, फिर भी सब उनके अधीन है। जिस रोज़ जहाँ ब्रिटिश सेना का पड़ाव है, उस रोज़ के लिए वह जगह ब्रिटिश सेना के अधीन है ; इसके बाद ब्रिटिश सेना के चले जाने पर वैसे ही चारों ओर 'वन्दे मातरम्' गाया जाने लगा। साहब खोज नहीं पाते, कहाँ से ये चींटी की क़तारों की तरह एक रात में निकल कर, जो गाँव आँगरेज़ों के क़ब्ज़े में आता है, उसे जला जाते हैं या थाड़ी संख्या में ब्रिटिश सेना पाते हैं उसका खात्मा कर देते हैं। खोज करते करते साहब ने मालूम किया कि पदचिह्न में क़िला बनाकर वहाँ ये लोग अपना अखागार और घनागार रखे हुए हैं। अस्तु उस क़िले पर क़ब्ज़ा करना उचित है, उन्होंने निश्चय किया।

गुप्तचरों से वे संवाद लेने लगे कि पदचिह्न में कितने सन्तान रहते हैं। जो संवाद उन्हें मिला, उससे क़िले पर हमला करना उन्होंने उचित नहीं सोचा। मन ही मन एक अपूर्व कौशल की उद्भावना की।

सामने माघी पूर्णिमा आई। उनके पड़ाव के पास नदी के किनारे एक मेला लगेगा। इस दफ़ा मेले की बड़ी तैयारियाँ हैं। सहज ही मेले में एक

लाख के करीब भीड़ होती है। इस दफा वैष्णव राजा हुए हैं, मेले में वैष्णव बड़ी तैयारियों से आयेंगे, सङ्कल्प किया है। अस्तु पूर्णिमासी के दिन कुल सन्तानों की मेले में एकत्र होने की सम्भावना है। मेजर एडवर्ड्स ने सोचा कि पदचिह्न के सब रत्नों की भी मेले में आने की सम्भावना है। उसी समय पदचिह्न में जाकर वे क़िले पर अधिकार करेंगे।

मेजर ने यह अभिप्राय प्रचारित किया कि वे मेले पर आक्रमण करेंगे ; एक जगह कुल वैष्णवों के पाकर एक दिन में दुश्मनों का खात्मा कर देंगे, वैष्णवों का मेला नहीं लगने देंगे।

गाँव गाँव यह संवाद प्रचारित हुआ। तब सन्तान-सम्प्रदायवाला जो जहाँ था, उसी वक्त अस्त्र लेकर मेले की रक्षा के लिए दौड़ पड़ा। सभी सन्तान नदी के किनारे माघो पूर्णिमा के आकर मिले। मेजर साहब ने जो कुछ सोचा था, वही पूरा उतरा। अँगरेज़ों के सौभाग्य से महेन्द्र ने भी फन्दे में पेर डाला। पदचिह्न के क़िले में थोड़ी-सी सेना छोड़कर मेले के लिए अधिकांश लेकर महेन्द्र खाना हुआ।

ये सब बातें होने से पहले ही जीवानन्द और शान्ति पदचिह्न से बाहर हो गये थे। तब युद्ध की कोई बातचीत नहीं हुई, युद्ध की ओर उनका झुकाव भी नहीं था। माघो पूर्णिमा के शुभ दिन, शुभ समय, पवित्र जल में प्राणों का विसर्जन कर प्रतिज्ञाभङ्ग-रूप महापाप का प्रायश्चित्त करेंगे, यही उनकी अभिसन्धि थी। परन्तु रास्ता चलते चलते उन्होंने सुना कि मेले में आये हुए सन्तानों के साथ अँगरेज़ों का महायुद्ध होगा। जीवानन्द ने कहा, “तो लड़ाई में ही मरूँगा, जल्दी चलो।”

वे जल्द जल्द चले। एक जगह एक टीले पर से रास्ता गया है। टीले पर चढ़कर वीर-दम्पति ने देखा, नीचे कुछ दूर पर अँगरेज़ों का शिविर है। शान्ति ने कहा, “मरने की बात अभी रहे, कहो, वन्दे मातरम्।”

पाँचवाँ परिच्छेद

तब दोनों ने कानोंकान कोई परामर्श किया। परामर्श करके जीवानन्द एक वन में छिपे। शान्ति एक दूसरे वन में घुसकर अद्भुत रहस्य में प्रवृत्त हुई।

शान्ति मरने जा रही थी, मरने के समय स्त्री-वेश धारण करेगी, निश्चय किया था। महेन्द्र ने कहा है, वह पुरुष-वेश से दूसरों को धोखा देती है। दूसरों को धोखा देते हुए मरा नहीं जायगा। इसलिए टेपरिया वह साथ ले आई है, उसमें उसकी पहनाव-ओढ़ाववाली चीज़ें हैं। अब नवीनानन्द टेपरिया खोलकर वेश बदलने लगे।

मधुर मधुर तिलक पर कत्थे की विन्दो लगाकर, उस समय के प्रचलित घुँघराते, भपटे से चाँद मुख ढककर, एक सरङ्गो हाथ में लेकर वैष्णवी के वेश से शान्ति अँगरेज़-शिविर में गई। देखकर भौंरे-सी काली दाढ़ी मूछोंवाले सिपाही पागल हो गये। किसी ने टप्पा, किसी ने गज़ल, किसी ने श्यामाविषय, किसी ने कृष्ण-विषय की फरमाइश की और गाना सुना। किसी ने चावल दिया, किसी ने दाल दी, किसी ने मिठाई दी, किसी ने पैसा दिया, किसी ने चवन्नी दी। वैष्णवी जब शिविर की अवस्था अपनी आँखों विशेष रूप से देखकर चली जा रही थी, सिपाहियों ने पूछा, “फिर कब आओगी?” वैष्णवी ने कहा, “यह नहीं कह सकती, मेरा मकान बहुत दूर है।” सिपाहियों ने पूछा, “कितनी दूर?” वैष्णवी ने कहा, “मेरा मकान पदचिह्न में है।” इस समय वही मेजर साहब पदचिह्न की कुछ खबरें ले रहे हैं, एक सिपाही यह जानता था। वैष्णवी को बुलाकर वह कप्तान साहब के पास ले गया। साहब उसे मेजर के पास ले गये। मेजर साहब के पास जाकर, वैष्णवी मधुर हँसकर, मर्मभेदी कटाक्ष करके साहब का सर चकरा कर, खँकड़ी बजाती हुई गाने लगी—

“मलेच्छनिवह-निधने कलयसि करवालम् ।”

साहब ने पूछा, “तुम्हारा मकान कहाँ बीबी ?”

बीबी ने कहा, “मैं बीबी नहीं, वैष्णवी हूँ, मकान पदच्छिन्न में है ।”

साहब—Where is that adsin padsin ? वहाँ एक गर है ?

वैष्णवी ने कहा, “घर ?—कितने घर हैं ।”

साहब—गर नईं—गर नईं—गर—गर—

शान्ति—साहब, तुम्हारे मन की बात समझी । गढ़ ? ,

साहब—इयस्, इयस्, गर । गर है ?

शान्ति—गढ़ है । बड़ा क़िला है ।

साहब—केट्टे आदमी ?

शान्ति—गढ़ में कितने आदमी रहते हैं ? बीस-पच्चीस हज़ार ।

साहब—नान्सेन्स ! एक क़िला में डो-चार हज़ार रह सकता । वहीं अबी है या निकल गया ?

शान्ति—निकलेंगे कहाँ ?

साहब—मेला में टोम कब वहाँ से आया ?

शान्ति—कल आई हूँ, साहब ।

साहब—वह लोग आज निकल गया होगा ।

शान्ति मन ही मन सोच रही थी, “तुम्हारे बाप की श्राद्ध के चावल अगर मैंने नहीं चढ़ाये, तो मेरा तिलक लगाना ही वृथा है । कब स्यार तुम्हारा सर खायेंगे, मैं देखूँगी ।” खुलकर कहा, “साहब, हाँ साहब, हो सकता है, आज निकल गये हों तो निकल जा सकते हैं । इतनी ख़बर मैं नहीं रखती, वैष्णवी हूँ, गाने गाकर भीख माँगकर खाती हूँ ; इतनी ख़बर नहीं रखती । बकते हुए गला सूख गया, पैसा दो, जाऊँ । और अच्छो तरह बख़्शिश दो तो न हो परसें आकर कह जाऊँगी ।”

उठ से एक नक्रद रूपया फेंककर साहब ने कहा, “परसें नहीं बीबी !”

शान्ति ने कहा, “धत्तरे की, वैष्णवी कह, बीबी क्या है ?”

एड्वर्ड्स—परसों नहीं, आज रात को हमको खबर मिलना चाहिए।

शान्ति—सिरहाने बन्दूक रखकर, शराब चढ़ाकर, नाक में सरसों का तेल डालकर सोओ। आज मैं दस कोस रास्ता चलूँगी और लौटूँगी—आपको खबर ला दूँगी ! छुतिहे कहीं के !

एड्—छुतिहे कहीं के किसको कहता है ?

शान्ति—जो त्नीर—बड़ा जन्डैल है।

एड्—Great General (बड़ा जनरल) हम हो सकता है—फ़ाइव का माफ़क। लेकिन आज हमको खबर मिलना चाहिए। शौ रुपिया बकसीस देगा।

शान्ति—सौ दो, और हज़ार दो, बीस कोस इन दो पैरों से नहीं होगा।

एड्—घोड़े पर ?

शान्ति—घोड़े पर चढ़ना जानती तो तुम्हारे तम्बू में आकर सरङ्गी बजाकर भीख माँगती ?

एड्—गोद पर ले जायगा।

शान्ति—गोद पर बैठाकर ले जायगा, मेरे लज्जा नहीं ?

एड्—क्या मुस्किल, पान शौ रुपिया देगा।

शान्ति—कौन जायगा ? तुम खुद जाओगे ?

साहब ने तब डँगली के इशारे सामने खड़े हुए लिन्डले नाम के एक नौजवान एनसाइन को दिखाकर उससे पूछा, “लिन्डले, तुम जाओगे ?” शान्ति का रूप-यौवन देखकर लिन्डले ने कहा, “आह्लादपूर्वक।”

तब एक भारी अरबी घोड़ा कसकर लाया गया, लिन्डले भी तैयार हुआ। शान्ति को पकड़कर घोड़े पर चढ़ाने लगा। शान्ति ने कहा, छिः, इतने आदमियों के बीच ? मेरे क्या किसी बात की लज्जा नहीं ? पहले चलो, छावनी पार करें।”

लिन्डले घोड़े पर चढ़ा। घोड़ा धीरे धीरे ले चला। शान्ति पीछे पीछे पैदल चली। इस तरह वे शिविर के बाहर आये।

शिविर के बाहर आने पर एकान्त प्रान्तर देखकर शान्ति लिन्डले के पैर पर पैर रखकर एक उड़ान से घोड़े पर पहुँची। लिन्डले ने हँसकर कहा, “तुम तो पूरे सवार हो।”

शान्ति ने कहा, “हम ऐसे पक्के सवार हैं कि तुम्हारे साथ चढ़कर चलते लाज लगती है। छिः, रकाब में पैर रखकर सवारी करना !”

एक दफ़ा शेखी बघारने के लिए लिन्डले ने रकाब से पैर निकाला। शान्ति ने उसी वक्त मूल्य अँगरेज़ के गले में हाथ लगाकर घोड़े से उसे गिरा दिया। घोड़े की पीठ पर तब शान्ति बाक्रायदा जमकर बैठी, पेट में कड़ों की एड़ लगाकर अरबी का हवा के साथ ले चली। चार साल सन्तानों की सेना में रहकर शान्ति ने घोड़े की सवारी भी सीखी थी। बग़ैर सीखे वह जीवानन्द के साथ थोड़े ही रह सकती थी। लिन्डले का पैर टूट गया, वे वहीं पड़े रहे। शान्ति वायुवेग से अश्वशृष्ठ पर चली।

जिस वन में जीवानन्द छिपे थे, शान्ति ने वहाँ जाकर कुलसमाचार जीवानन्द के दिये। जीवानन्द ने कहा, “तो मैं जल्द जाकर महेन्द्र के होशियार करता हूँ। तुम मेले में जाकर सत्यानन्द को खबर दो। तुम घोड़े पर जाओ, प्रभु जैसे जल्द सेवाद पायें।” तब दोनों आदमी दो तरफ़ दौड़े। कहना व्यर्थ है, शान्ति फिर नवीनानन्द बनी।

—

छठा परिच्छेद

एडवर्ड पक्के अँगरेज़ थे। चट्टी-चट्टी में उनके आदमी थे। जल्द उनके पास खबर पहुँची कि वह वैष्णवी लिन्डले साहब को गिराकर खुद घोड़े पर सवार होकर कहीं चली गई है। सुनते ही एडवर्ड ने कहा, “An aunt of Satan ! Strike the tents.” (शैतान की बच्ची है ! तम्बू उठाओ।)

तब खटाखट तम्बू के खूंटों पर हथौड़े की चोटें पड़ने लगीं। मेघ-रचित अमरावती की तरह वस्त्रनगरी अन्तर्हित हुई। माल गाड़ियों पर लदा। आदमी घोड़ों पर या अपने पैरों पर। हिन्दू, मुसलमान, मद्रासी, गोरे कन्धे पर बन्दूक रखके चर-मर करते हुए चले। तोपें चरखियों पर घरघराती हुई चलीं।

इधर महेन्द्र सन्तानों की सेना लेकर क्रमशः मेले के रास्ते बढ़ रहे थे। उसी दिन तीसरे पहर महेन्द्र ने सोचा, दिन ढल चुका, कहीं खेमे गाड़ने चाहिए।

शिविर का संस्थापन उन्होंने उचित समझा। वैष्णवों के तम्बू नहीं; पेड़ के नीचे बोरिया या कथरी बिछाकर लेटते हैं। थोड़ा-सा हरिचरणामृत पान कर रात पार करते हैं। भूल जो बाकी रहती है, स्वप्न में वैष्णवी देवी का अध-रामृत पानकर मिटाते हैं। शिविर के लायक पास एक जगह थी; एक बड़ा बगीचा, जिसमें आम, कटहल, बबूल और इमली थे। महेन्द्र ने आज्ञा दी, “यहीं शिविर स्थापित करो।” उसी की बगल में एक टीला था, चढ़ने में बड़ा ऊबड़ खाबड़। महेन्द्र ने एक दफ़ा सोचा, इस पहाड़ी पर शिविर करने पर अच्छा होगा। जगह देख आँगे।

यह सोचकर महेन्द्र घोड़े पर सवार होकर धीरे धीरे टीले पर चढ़ने लगे।

वे कुछ दूर चढ़े तो एक युवा वैष्णव ने सेना के भीतर आकर कहा, “चलो, टीले पर चढ़ो।” पास जो लोग थे, उन्होंने विस्मित होकर पूछा, “क्यों?”

योद्धा ने मिट्टी के एक टीले पर खड़े होकर कहा, “चलो, इस चाँदनी रात में उस पहाड़ी की चोटी पर नये वसन्त के नये फूलों की सुगन्ध लेते लेते आज हमें शत्रु से युद्ध करना होगा।” सन्तानों ने देखा, सेनापति जीवानन्द हैं। तब ‘हरे मुरारे’ की ऊँची आवाज़ करती हुई सन्तानों की कुल सेना बल्लम के सहारं उठकर खड़ी हुई और जीवानन्द का अनुकरण करती हुई तेज़ी से टीले पर चढ़ने लगी। एक ने सजा घोड़ा जीवानन्द को लाकर दिया। दूर से महेन्द्र देखकर विस्मित हुए। सोचा, यह क्या, न कहते ही ये क्यों आ रहे हैं। यह कहकर महेन्द्र घोड़े का मुँह फेरकर चाबुक लगाते गर्द उड़ाते हुए पहाड़ी से उतरने लगे। सन्तानवाहिनी के सामने चलनेवाले जीवानन्द को देखकर पूछा, “यह क्या है, आनन्द?”

जीवानन्द ने हँसकर कहा, “आज बड़ा आनन्द है। टीले के उस तरफ एडवर्ड्स साहब हैं। जो पहले टीले पर जायेगा, उसी की विजय है।”

फिर जीवानन्द ने सन्तान-सेना को पुकारकर कहा, “तुम लोग पहचानते हो? मैं जीवानन्द गोस्वामी हूँ। मैंने हजार शत्रुओं के प्राण लिये हैं।”

तुमुल निनाद ने वन और प्रान्तर का ध्वनित किया—“हम पहचानते हैं, तुम जीवानन्द गोस्वामी हो।”

जीवा०—कहे, हरे मुरारे।

कानन और प्रान्तर सहस्र सहस्र कण्ठों से ध्वनित हुआ, “हरे मुरारे!”

जीवा०—टीले के उस तरफ शत्रु हैं। आज ही इस टीले की चोटी पर इस नीलाम्बरी यामिनी के सामने सन्तान युद्ध करेंगे। जल्दी आओ, जो पहले शिखर पर चढ़ेगा, वही जीतेगा। कहे “वन्दे मातरम्!”

वन और मैदान का ध्वनित करके ‘वन्दे मातरम्’ गाना होने लगा। धीरे धीरे सन्तानों की सेना पहाड़ी की चोटी पर चढ़ने लगी। परन्तु उन लोगों ने

भय-पूर्वक देखा, महेन्द्रसिंह बड़ी द्रुत गति से टीले से उतरते हुए तूर्यध्वनि कर रहे हैं। देखते देखते शिखर पर नीलाकाश-पट में तोपों की क्रतार के साथ अँगरेजों की गोलन्दाज-सेना शोभा देने लगी। ऊँचे स्वर से वैष्णवी सेना ने गाया—

“तुमि विद्या तुमि भक्ति,
बाहुते तुमि मा शक्ति,
त्वं हि प्राणाः शरीरे ।”

परन्तु अँगरेजों की तोपों के ‘अररर अररर बम्’ शब्द में वह महागीत बह गया। सैकड़ों सन्तान हताहत होकर अस्त्र-शस्त्रों के साथ उस टीले पर सोये। फिर ‘अरररर बम्’ दधीचि की अस्थि को व्यङ्ग करके, समुद्र के तरङ्ग-भङ्ग को कुछ समझकर अँगरेजों का वज्र चलने लगा। किसान के हँसिये के सामने पके धान की तरह सन्तान-सेना टुकड़े टुकड़े होकर धराशायी होाने लगी। व्यर्थ ही जीवानन्द, व्यर्थ ही महेन्द्र प्रयत्न करते रहे। गिरती हुई शिलाराशि की तरह सन्तान-सेना टीले से फिरने लगी। कौन कहाँ भगे, ठिकाना नहीं। तब एक साथ सबके विनाश के लिए गोरो की पलटन ‘हुरें हुरें’ कहती हुई टीले से उतरी। सज्जीन उठाये हुए बहुत ही द्रुत वेग से पर्वत से गिरती हुई विशाल नदी के प्रपात की तरह, दुर्दम असंख्य, अजेय ब्रिटिश सेना भगती हुई सन्तान-सेना के पीछे लगी। एक दफा महेन्द्र से मुलाक़ात होने पर जीवानन्द ने कहा, “आज अन्त है। आओ, यहीं मरें।”

महेन्द्र ने कहा, मरने पर अगर लड़ाई फ़तह होती तो मरा जाता, वृथा मृत्यु वीर का धर्म नहीं।”

जीवा०—मैं वृथा ही मरूँगा। फिर भी लड़ाई में मरूँगा।

फिर पीछे फिरकर ऊँचे स्वर से जीवानन्द ने पुकारा, “कौन हरिनाम करते हुए मरना चाहते हो, मेरे साथ आओ।”

बहुतेरे बढ़े । जीवानन्द ने कहा, “इस तरह नहीं । ईश्वर के सामने शपथ करो, जीते हुए नहीं लौटोगे ।”

जो बढ़े थे, वे खिंचे । जीवानन्द ने कहा, “कोई नहीं आओगे ? तो मैं अकेला चला ।”

जीवानन्द ने घोड़े की पीठ पर सीधे होकर बहुत दूर पीछे छूटे हुए महेन्द्र का पुकार कर कहा, “भाई, नवीनानन्द से कहना, मैं चला, परलोक में मुलाकात होगी ।”

यह कहकर उस वीर ने लोहे की वर्षा के भीतर वेग से घोड़े का पैठा दिया, बायें हाथ में बल्लम, दायें में बन्दूक, मुख में हरे मुरारे, हरे मुरारे, हरे मुरारे । लड़ाई की सम्भावना नहीं; इस साहस का कोई फल नहीं । फिर भी, हरे मुरारे ! हरे मुरारे ! गाते गाते जीवानन्द शत्रु के व्यूह में प्रवेश कर गये ।

भगते हुए सन्तानों को पुकारकर महेन्द्र ने कहा, “देखो, एक दफ़ा तुम लोग घूमकर जीवानन्द गोसाईं को देखो; देखने पर मरोगे नहीं ।”

लौटकर कुछ सन्तानों ने जीवानन्द की अमानुषी कृति देखी; पहले विस्मित हुए, इसके बाद कहा, “जीवानन्द मरना जानते हैं, हम लोग नहीं जानते ? चलो, जीवानन्द के साथ वैकुण्ठ चलें ।”

यह बात सुनकर कुछ सन्तान लौटे । उनकी देखादेखी कुछ और भी लौटे, उनकी देखादेखी कुछ और । एक शोरगुल उठा । जीवानन्द शत्रु के व्यूह में पैठ गये थे । सन्तानों में किसी ने उन्हें नहीं देखा ।

इधर सम्पूर्ण रणक्षेत्र से सन्तानों ने देखा, कुछ सन्तान फिर लौट रहे हैं । सबने सोचा, सन्तानों की जय हुई है, सन्तान शत्रु का खेदे जा रहे हैं । तब कुल सन्तान-सेना मार मार कहती हुई अंगरेज़-सेना पर दूट पड़ी ।

इधर अंगरेज़-सेना में एक भारी भगदड़ पड़ गई । सिपाही लड़ने की ओर ध्यान न देकर दोनों तरफ़ से भग रहे हैं । गोरे भी लौटकर सज़्जीन ऊँची

कर शिविर की तरफ दौड़ रहे हैं। इधर-उधर निरीक्षण करके महेन्द्र ने देखा, टीले की चोटी पर असंख्य सन्तान-सेना देख पड़ रही है। वह वीरदर्प से उतर कर अंगरेज़-सेना पर आक्रमण कर रही है। तब उन्होंने सन्तानों को पुकार कर कहा, “हे सन्तानो, वह देखो, शिखर पर प्रभु सत्यानन्द गोस्वामी की ध्वजा देख पड़ रही है। आज साक्षात् मुरारि मधुकैटभ-निसूदन केशि-कंस-विनाशन युद्ध में अवतीर्ण हैं—एक लाख सन्तान शिखर पर हैं! कहो हरे मुरारे! हरे मुरारे!”

तब ‘हरे मुरारे’ की भीषण ध्वनि से कानन और प्रान्तः मथित होने लगे। समस्त सन्तानों ने ‘मा भैः मा भैः’ शब्द से ललित-ताल-ध्वनि-संवलित अस्त्रों की झनकार से सब जीवों को विमोहित कर लिया। दर्प से महेन्द्र की वाहिनी ऊपर चढ़ने लगी। शिलाओं के प्रतिघात से लौटाली हुई निर्भरिणी की तरह राज-सेना विलोडित, स्तम्भित और भीत हुई। उसी समय पच्चीस हजार सन्तान-सेना लेकर ब्रह्मचारी सत्यानन्द समुद्र-प्रपात की तरह राज-सेना पर टूटे। भयङ्कर युद्ध हुआ।

जैसे दो बड़े-बड़े पत्थरों के संघर्ष से, बीच में छोटी मक्खी पिस जाती है, उसी तरह दो सन्तान-सेना के संघर्ष में वह विशाल राज-सेना निष्पेषित हो गई।

वारेन हेस्टिङ्स के पास खबर ले जाय, ऐसा आदमी नहीं रहा।

सातवाँ परिच्छेद

रात पोर्णमासी है। वह भीषण रणक्षेत्र इस समय स्थिर है। वह घोड़ों की खटापट, वह बन्दूकों की कड़ाकड़, तोपों की धड़ाम-धम्म और सर्वव्यापी धुवाँ अब कुछ भी नहीं। कोई दुरे नहीं कह रहा, कोई हरि ध्वनि नहीं कर रहा। बोल रहे हैं सिर्फ स्यार, कुत्ते, गीध; सबसे ज्यादा हैं घायल व्यक्तियों का आर्तनाद। किसी का हाथ कट गया है, किसी का सर फूट गया है, किसी का पैर टूट गया है, किसी के पञ्जर में छेद हो गया है, कोई कोई 'बाप' पुकार रहे हैं। कोई पानी चाहता है, किसी की कामना है मृत्यु। बङ्गाली, हिन्दुस्तानी, मुसलमान, ऍंगरेज एक जगह लिपटे पड़े हैं ! जिन्दों और मुर्दों, आदमियों और घोड़ों की ठसाठस गबड़सट। माघ की उस पौर्णमासी रात को, कठिन जाड़े में, साफ चांदनी में, रणभूमि बड़ी भयङ्कर दिख रही थी। वहाँ जाने की किसी का हिम्मत नहीं होती।

किसी के हिम्मत नहीं होती, परन्तु आधी रात को एक स्त्री उस अगम्य रणक्षेत्र में विचरण कर रही थी। एक मशाल जलाकर उस शवराशि के बीच वह क्या खोज रही थी। हर एक मुर्दे के मुँह के पास मशाल ले जाकर मुँह देखकर फिर दूसरे मुर्दे के पास मशाल ले जाती थी। कहीं कोई मुर्दा मरे घोड़े के नीचे दबा है, वहाँ युवती मशाल मिट्टी में गाड़कर घोड़े के दोनों हाथों से हटाकर मुर्दा निकालती थी। फिर जब देखती थी, वह जिसे खोज रही है, यह वह नहीं, तब मशाल उठाकर हट जाती थी। इस तरह खोजती हुई युवती सारा मैदान फिरी। जिसे खोज रही है, उसे कहीं भी नहीं पाया। तब मशाल डालकर शवराशि से पूर्ण उस लोहू-सुहान भूमि में लोटकर राने लगी। वह शान्ति थी, जीवनानन्द की देह खोज रही थी।

शान्ति लोटती हुई रोने लगी। इसी समय बड़ी मधुर करुणा ध्वनि उसके कानों में गई। कोई जैसे कह रहा है, “उठो मा, रोओ नहीं।” शान्ति ने आँखें उठाकर देखा, देखा, सामने ज्योत्स्नालोक में खड़े हुए, एक, पहले के न दिखे, भारी शरीर के, जटाजूटधारी महापुरुष हैं।

शान्ति उठकर खड़ी हो गई। जो आये थे, उन्होंने कहा, “मा, रोओ नहीं, जीवनन्द की देह मैं खोज देता हूँ। तुम मेरे साथ आओ।”

तब वे महापुरुष शान्ति को, रणक्षेत्र के मध्य भाग में ले गये। वहाँ अनगिनती लाशें एक दूसरी पर पड़ी थीं। शान्ति उन सबको हिला नहीं सकी। उस शवराशि से उस महा बलवान् पुरुष ने एक लाश अलग करके बाहर निकाली। शान्ति ने पहचाना, वह जीवनन्द की देह थी। सारे अंगों में घाव लगे हुए, सारी देह खून से तर। शान्ति साधारण स्त्री की तरह ऊँचे स्वर से रोने लगी।

उन्होंने फिर कहा, “मा, रोओ नहीं। जीवनन्द क्या मरा है? स्थिर होकर इसकी देह की परीक्षा करके देखो। पहले नाड़ी देखो।”

शान्ति ने शव की नाड़ी देखी, किञ्चिन्मात्र भी गति नहीं। उस पुरुष ने कहा, “हृदय पर हाथ रखकर देखो।”

जहाँ हृत्पिण्ड है, शान्ति ने हाथ रखकर देखा, ज़रा भी गति नहीं, सब ठण्डा पड़ गया है।

उस पुरुष ने फिर कहा, “नाक के पास हाथ रखकर देखो—कुछ साँस चल रही है?”

शान्ति ने देखा, कुछ भी नहीं।

उस महापुरुष ने कहा, “फिर देखो, मुँह के भीतर उँगली रखकर देखो—कुछ गरमो है या नहीं।”

शान्ति ने उँगली रखकर, मालूम करते हुए कहा, “कुछ समझ नहीं पा रही।” शान्ति आशामुग्ध हो गई थी।

महापुरुष ने बायें हाथ से जीवानन्द की देह छुई। कहा, “तुम भय से हताश हो गई हो, इसी लिए समझ नहीं पा रही हो। जान पड़ता है, देह में अभी तक कुछ गरमी है। अच्छा, फिर देखो।”

शान्ति ने तब फिर नाड़ी देखी, कुछ गति है। विस्मित होकर हृत्पिण्ड पर हाथ रखवा—कुछ धक धक कर रहा है। नाक के सामने उँगली रखी—कुछ साँस चल रही है। मुँह के भीतर कुछ गरमी मिली। शान्ति तब अञ्जुब में आकर बोली, “प्राण क्या थे ? या फिर आये हैं ?”

उन्होंने कहा, “यह भी कहीं होता है मा ? तुम इसे लेकर तालाब के किनारे ले आ सकोगी ? मैं चिकित्सक हूँ, इसकी चिकित्सा करूँगा।”

शान्ति अनायास ही जीवानन्द को गोद में लेकर तालाब के किनारे चली। चिकित्सक ने कहा, “तुम इसे तालाब में ले जाकर सारा खून धो दो। मैं दवा लेकर आता हूँ।”

शान्ति ने जीवानन्द को तालाब के किनारे ले जाकर कुल खून धो दिया। उसी वक्त चिकित्सक ने जङ्गली लतापत्रों का प्रलेप ले आकर कुल घावों के मुँह में लगाया, इसके बाद जीवानन्द के कुल अङ्गों में बार बार हाथ फेरा। तब जीवानन्द एक लम्बी साँस छोड़कर उठ बैठे। शान्ति के मुँह की ओर देखकर पूछा, “लड़ाई में किसकी जीत हुई ?”

शान्ति ने कहा, “तुम्हारी ही जीत हुई। इन महात्मा को प्रणाम करो।”

तब दोनों ने देखा, कहीं कोई नहीं, किसे प्रणाम करेंगे ?

पास विजयी सन्तान-सेना का उठता हुआ ऊँचा केलाहल सुनाई पड़ रहा था, परन्तु शान्ति या जीवानन्द कोई उठे नहीं—उस पूर्ण चन्द्र की किरणों से समुज्ज्वल पुष्करिणी के सोपान पर बैठे रहे। जीवानन्द की देह उस दवा के गुण से बहुत थोड़े समय में अच्छी हो आई। उन्होंने कहा, “शान्ति, चिकित्सक की दवा में आश्चर्यकर गुण है। मेरी देह में अब

किसी तरह का दर्द या सुस्ती नहीं—अब कहां चलीगी, चलो। वह सन्तान-सेना का विजय के उत्सव का शोर सुन पड़ रहा है।”

शान्ति ने कहा, “अब और वहां नहीं। मा का काम पूरा हो चुका है। यह देश सन्तानों का हुआ है। हमें राज्य का हिस्सा नहीं चाहिए। अब फिर क्या करने जायें?”

जी०—जो कुछ छीना है, उसे बाहों के बल से रखना होगा।

शा०—रखने के लिए महेन्द्र हैं। सत्यानन्द स्वयं हैं। तुम प्रायश्चित्त करके सन्तान-धर्मवाला शरीर छोड़ चुके हो। इस पुनः पाये शरीर पर सन्तानों का अधिकार नहीं। हम सन्तानों के लिए मर चुके हैं। अब हमें देखने पर सन्तान लोग कहेंगे, जीवानन्द लड़ाई के समय प्रायश्चित्त के डर से छिपा था, विजय हुई है देखकर, राज्य का हिस्सा बटाने आया है।

जी०—सो क्या शान्ति? लोगों के अपवाद के भय से अपना काम छोड़ दूँगा? मेरा काम मातृ-सेवा है; कोई कुछ भी कहे, मैं मातृ-सेवा ही करूँगा।

शा०—उसमें अब तुम्हारा अधिकार नहीं, क्योंकि अपनी देह तुम मातृ-सेवा के लिए छोड़ चुके हो। यदि फिर मा की सेवा तुम्हें करने को मिली, तो तुम्हारा प्रायश्चित्त क्या हुआ? मातृ-सेवा से वञ्चित होना ही इस प्रायश्चित्त का प्रधान अंश है। नहीं तो सिर्फ तुच्छ प्राणों का त्याग क्या कोई बड़ा भारी काम है?

जी०—शान्ति, तुम्हीं सब कुछ समझ सकती हो। मैं इस प्रायश्चित्त को असम्पूर्ण नहीं रखूँगा। मेरा सुख सन्तान-धर्म में है, उस सुख से अपने को वञ्चित करूँगा। परन्तु जाऊँगा कहाँ? मातृ-सेवा छोड़कर घर जाकर सुख भोग तो नहीं कर सकूँगा।

शा०—क्या मैं ऐसा कह रही हूँ? हम अब गृही नहीं। इसी तरह दोनों संन्यासी रहेंगे, चिर ब्रह्मचर्य पालन करेंगे। चलो, इस समय हम देश-देश तीर्थ करते घूमें।

जी०—फिर ?

शा०—फिर हिमालय पर कुटी तैयार कर दोनों देवता की आराधना करेंगे,—जिससे माता का मङ्गल हो, वह वर माँगे ।

इसके बाद दोनों उठकर हाथ पकड़े हुए ज्योत्स्नामयी निशीथ में अन्तर्हित हो गये ।

हाय ! फिर क्या आयँगे, मा ! जीवनन्द जैसा पुत्र, शान्ति जैसी कन्या क्या फिर गर्भ में धारण करोगी ?

— — —

आठवाँ परिच्छेद

सत्यानन्द महाराज लड़ाई के मैदान से, किसी से कुछ कहे बगैर, आनन्दमठ चले आये। वहाँ गहरी रात को विष्णुमण्डप में बैठकर ध्यान करने लगे। इसी समय वे चिकित्सक वहाँ पहुँचकर दिखलाई दिये। देखकर सत्यानन्द ने उठकर प्रणाम किया।

चिकित्सक ने कहा, “सत्यानन्द, आज माघी पूर्णिमा है।”

सत्या०—चलिये, मैं तैयार हूँ, परन्तु हे महात्मन्, मेरा एक सन्देह दूर कीजिए। जिस मुहूर्त युद्ध में विजय प्राप्त कर मैंने सनातन-धर्म को निष्कण्टक किया, उसी समय मेरे लिए यह त्याग की आज्ञा क्यों हुई?

जो आये थे, उन्होंने कहा, “तुम्हारा कार्य सिद्ध हो चुका है। मुसलमानों का राज्य ध्वस्त हो चुका है। अब तुम्हारा और कोई काम नहीं। व्यर्थ की जीवहत्या की आवश्यकता नहीं।”

सत्या०—मुसलमानों का राज्य ध्वस्त हो चुका है, परन्तु हिन्दू-राज्य स्थापित नहीं हुआ, अभी कलकत्ते में अंगरेज़ प्रबल हैं।

वे—हिन्दू-राज्य अभी भी स्थापित नहीं होगा। तुम रहोगे तो व्यर्थ ही नर-हत्यायें होंगी, इसलिए चलो।

सुनकर सत्यानन्द तीव्र मर्म-पीड़ा से कातर हुए। कहा, “हे प्रभो, यदि हिन्दू-राज्य स्थापित नहीं होगा तो कौन राजा होगा? फिर क्या मुसलमान राजा होंगे?”

उन्होंने कहा, “नहीं, अब अंगरेज़ राजा होंगे।”

सत्यानन्द की दोनों आँखों से आँसुओं की धारा बहने लगी। वे ऊपर स्थित मातृरूपा जन्मभूमि-प्रतिमा की तरफ़ फिर कर हाथ जोड़कर वाष्परुद्ध

